कुरुक्षेत्र

अगस्त 2000

ग्रामीण विकास को समर्पित

मूल्य : सात रुपये

- आदिवासी क्षेत्र शहडोल में शिक्षा का प्रचार–प्रसार
- सामाजिक समानता के लिए जरूरी है बालिका शिक्षा
- आज भी उपयोगी हैं बोझा ढोने वाले पशु और बैलगाड़ियां

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना

(ग्रामीण आवास)

मानव–जीवन के लिए आवास एक बुनियादी जरूरत है। सभी नागरिकों को न केवल आवास की जरूरत होती है बल्कि उनको अपने घरों में पेयजल तथा उचित स्वच्छता जैसी सुविधाओं की भी जरूरत होती है। इस प्रयोजनार्थ ग्रामीण आवास के क्षेत्र में प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के रूप में हाल ही में एक नई योजना की घोषणा की गई है जिसमें ग्रामीण गरीबों को लाभ पहुंचाने पर ध्यान दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब लोगों को आवास उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी ग्रामीण विकास मंत्रालय को सौंपी गई है। यद्यपि मंत्रालय इंदिरा आवास सहित कई योजनाएं पहले से ही कार्यान्वित कर रहा है, फिर भी ग्रामीण आवास के क्षेत्र में कार्य की महत्ता को देखते हुए ऐसा अनुभव किया गया है कि एक व्यापक योजना को लाकर इस दिशा में किए जा रहे प्रयासों को समर्थन देना आवश्यक है। इस नई योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों के लिए आवास की कमी को कम करना तथा इन क्षेत्रों में स्वस्थ पर्यावास विकास में मदद करना है। प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास) सामान्यतः इंदिरा आवास योजना के पैटर्न पर आधारित होगी तथा इसे पूरे देश में कार्यान्वित किया जाएगा।

लक्ष्य समूह

योजना के अंतर्गत मकानों के लिए लक्ष्य समूह में ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदूर वर्ग के लोग और गैर–अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग हैं। गैर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों के लिए आवासों के निर्माण हेतु वित्त वर्ष के लिए योजना के अंतर्गत कुल आबंटन के 40 प्रतिशत से ज्यादा

(तृतीय आवरण पृष्ठ पर जारी)

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय
की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 45 अंक 10

श्रावण–भाद्रपद 1922

अगस्त 2000

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
पी.सी. अहुजा

आवरण सज्जा
अलका नय्यर

रेखांकन
संजीव शाश्वती

फोटो साभार :
मीडिया डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- ग्रामीण बेरोजगारी : समस्या और समाधान — प्रो. डा. पारसनाथ सिंह, डा. कृष्ण कुमार सिंह — 3
- महिलाएं और ग्राम सभा — डा. महीपाल — 7
- ग्राम विकास में न्याय पंचायतों की भूमिका — डा. सुरेन्द्र कटारिया — 9
- राजस्थान के गांवों में वार्ड सभाएं — डा. दौलत राज थानवी — 11
- आदिवासी क्षेत्र शहडोल में शिक्षा का प्रचार–प्रसार — अनिल चमड़िया — 13
- राजस्थान में नया शिक्षा आन्दोलन शिक्षा दर्पण – 2000 — राधेश्याम तिवारी — 17
- बहुत आशाएं हैं पवन ऊर्जा से — धनंजय चोपड़ा — 19
- आज भी उपयोगी हैं बोझा ढोने वाले पशु और बैलगाड़ियां — डा. राम सूरत त्रिपाठी — 21
- सामाजिक समानता के लिए जरूरी है बालिका शिक्षा — देवेन्द्रनाथ के. पटेल — 27
- उत्तर प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों के ग्रामीण विकास में ग्राम प्रधानों की भूमिका — आलोक पाण्डेय — 30
- किनारा (कहानी) — महेश चन्द्र जोशी — 37
- उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक — डा. नरेश चन्द्र त्रिपाठी — 40
- रेशम कीट पालन एक रोजगारपरक उद्योग — भानु प्रकाश पाठक — 42
- शहरों में भटकती उजड़े गांवों की आत्मा — योगेन्द्र कृष्णा — 45
- कृषि संबंधी कानून (स्थायी स्तम्भ) — सावित्री निगम — 47

पाठकों के विचार

कविता और कवि का नाम विषय सूची में दें

महाभारत का नहीं,, अपितु ग्रामीण भारत का *कुरुक्षेत्र* देखा। मई अंक मेरे सामने है। आवरण चित्र प्रभावशाली है। यदि पत्रिका के नाम के नीचे ग्रामीण विकास को समर्पित न लिखा जाता, तब भी प्रकाशित चित्रों के संयोजन से यह खुद–ब–खुद जाहिर हो रहा है। मेरा मानना है कि लिखे हुए दस हजार शब्दों में भी जो बात कारगर तरीके से नहीं कही जा सकती, उसे सिर्फ एक चित्र आसानी से अभिव्यक्त कर देता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पत्रिका ग्रामीणों के लिए उपयोगी है परंतु इसका पूरा लाभ ग्रामीणों को तभी मिल सकेगा यदि यह उन तक पहुंचे और वे इसे पढ़–समझ सकें। जबकि आप जानते ही हैं कि निरक्षरता का प्रकोप शहरों में कम, ग्रामों में सर्वाधिक है। इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने के लिए *मानव संसाधन विकास मंत्रालय का प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन* के माध्यम से दिन–रात जूझ रहा है। उसे सफलता मिल रही है, उसकी सफलता का लाभ ही आपकी पत्रिका की लोकप्रियता में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकता है।

वैसे भी एक अरब हो गए हैं हम। जो कि हमारे लिए खुशी का नहीं, गम का भी नहीं अपितु गंभीर चिंतन का विषय है। इस स्थिति तक हम इतनी जल्दी निरक्षरता के चलते ही पहुंचे हैं। साक्षरता और वो भी महिला साक्षरता के अभाव में परिवार कल्याण कार्यक्रमों का भरपूर लाभ नहीं उठाया जा पा रहा है। इसमें तेजी लाने के लिए साक्षरता का व्यापक फैलाव, मिशन के जरिए उत्तर शिक्षा और सतत शिक्षा के आयामों को प्राप्त करे, तभी आबादी पर भी अंकुश लग सकेगा। *नारी शिक्षा और ग्रामीण विकास* शीर्षक लेख में मधु ज्योत्सना ने काफी बेहतर तरीके से समस्याओं का चित्रण और उससे उबरने के उपायों का जिक्र किया है।

पत्रिका में कविता का प्रकाशित तो होना परंतु विषय सूची में से नदारद होना, क्या किसी सरकारी नीति का अंग है या *कुरुक्षेत्र*

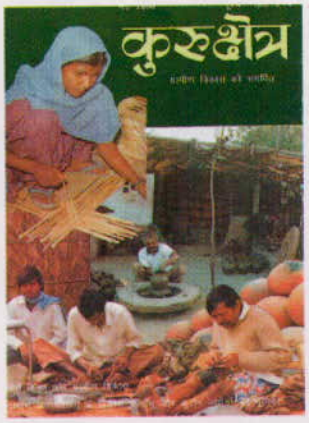

के पाठकों के लिए कोई क्विज (प्रतियोगिता)? अच्छा हो विषय सूची में कविता और कवि के नाम का उल्लेख किया जाए।

परिवार दिवस पर विशेष रूप से प्रकाशित सिमरन कौर का लेख *परिवार की संरचना से जुड़े पहलू* परिवार से जुड़ी समस्याओं पर विचार के लिए एक व्यापक फलक प्रदान करता है। महिला, आबादी, साक्षरता, मानव अधिकार जैसे मुद्दे एक–दूसरे से इतने संपृक्त हो चुके हैं कि इन्हें पृथक–पृथक देखना संभव नहीं है। एक की चर्चा करने पर दूसरे से स्वयंमेव ही संबंध स्थापित हो जाता है।

अंत में, स्वास्थ्य चर्चा स्तंभ के लेख *करेले की कड़वाहट में छिपे हैं मीठे गुण* लेख के लेखक शैलेश त्रिपाठी को धन्यवाद देते हुए इतना और जोड़ना चाहूंगा कि करेले के गुण उसकी कड़वाहट में भी मिठास का काम करते हैं। मुख में कड़वाहट परंतु मन में मिठास भर देते हैं। मोटापा कम करने में भी करेला सहायक सिद्ध हुआ है। इसके लिए करेले के रस में नींबू का रस मिलाकर या आधा ग्राम यवक्षार मिलाकर पीना चाहिए। करेले का सेवन करते समय सावधान रहना चाहिए क्योंकि करेला गर्मी करता है।

पत्र लंबा हो गया है परंतु *कुरुक्षेत्र* के कुशल संपादन के लिए संपादकीय विभाग को बधाई देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं।

अविनाश वाचस्पति, राष्ट्रभाषा नव–साहित्यकार परिषद, साहित्यकार सदन, 195, संतनगर नई दिल्ली–110065

गांधीयन माडल अपनाने की जरूरत

ग्रामीण विकास को समर्पित *कुरुक्षेत्र* का मई 2000 अंक पढ़ा। अपने विचारोत्पादक पत्र में *बड़े काका* को सर्वोच्च स्थान दिए बिना रहा ही नहीं जाता। सुरेश कुमार जी ने इस काहनी में साक्षरता की जीती–जागती तस्वीर प्रस्तुत की है। गागर में सागर भरने वाली कहावत इसमें चरितार्थ होती है। साथ ही इस अंक में कोई भी ऐसा आलेख नहीं जो पढ़ने और गुनने के लिए मजबूर न करता हो।

आजादी के 52 वर्ष में भी हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक गम्भीर समस्याएं हैं। गांवों की आधी से अधिक आबादी निरक्षर है। किसान पारंपरिक तकनीकों पर ही आश्रित हैं। हरित क्रांति, खेल क्रांति तथा नील क्रांति का लाभ सबसे नीचले सीढ़ी के लोगों तक नहीं पहुंच पाया है। गांवों में स्वास्थ्य और शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएं सुलभ नहीं हो पाई हैं मध्यवर्गीय परिवार टूट रहे हैं। जोतों का विखण्डन हो रहा है। ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी सुरसा की तरह मुंह फैलाए चली जा रही है। यह सब गांधीयन माडल की उपेक्षा का परिणाम है। आज से ही हमारे देश की गांधीयन माडल पर विचार कर इसे प्रभावपूर्ण ढंग से अपनाने की जरूरत है। जनसंख्या पर नियंत्रण हेतु कठोर कदम उठाने की जरूरत है क्योंकि विकास के सारे आयामों को जनसंख्या वृद्धि सीधे निगल जाती है।

डा. कृष्ण कुमार सिंह, गौरव ड्रैसेज, स्टेशन रोड, नवादा (आरा), भोजपुर (बिहार)

ग्रामीण बेरोजगारी : समस्या और समाधान

प्रो. डा. पारसनाथ सिंह
डा. कृष्ण कुमार सिंह

गांव हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मेरुदंड हैं। वर्ष 1991 की जनसंख्या के अनुसार भारत की 84.5 करोड़ की जनसंख्या में 67 करोड़ जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। दुर्भाग्यवश बड़ी संख्या में ग्रामवासी ही निर्धन, गरीब, बेरोजगार, शोषित और उपेक्षित हैं। यद्यपि ग्रामीणों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने के लिए अनेक कदम उठाए गए, लेकिन इससे अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह स्वीकार किया गया कि तीव्र गति से औद्योगिक विकास के बावजूद अतिरिक्त ग्रामीण जनसंख्या के लिए संगठित औद्योगिक क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध नहीं कराया जा सका है। अतः गहन कृषि, कृषि के विभिन्न आयामों, ग्रामीण उद्योंगों के विस्तारीकरण तथा अन्य ग्रामीण आर्थिक क्रियाओं और पूंजी निर्माण सम्बन्धी योजनाओं के माध्यम से ही अतिरिक्त रोजगार का निर्माण करना होगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी अपने आप में गरीबी तथा पिछड़ेपन का एक मूल कारण है। यह प्रदूषण का रूप धारण करती जा रही है। फलतः ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक तथा सामाजिक पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है और विकास के आयाम घटते जा रहे हैं। दूसरे शब्दों में, ग्रामीण बेरोजगारी दूर करना ही ग्रामीण विकास का मूलमंत्र है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'ग्रामीण स्वराज्य' का नारा दिया था। वे गांव को अपने–आप में पूर्णरूप में देखना चाहते थे। उनका विचार था कि गांव की सुरक्षा, विकास और नियंत्रण किसी बाहरी अधिकारी या अभिकरण द्वारा नहीं अपितु स्वयं ग्रामीणों द्वारा किया जाना चाहिए। इसके विपरीत आज ग्रामीण बेरोजगारी की मानसिकता स्वालम्बन न होकर नौकरी प्राप्त कर बाबू बनने की हो गई है। जबकि ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार वैज्ञानिक आधार पर आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर कृषि उत्पाद को बढ़ा सकते हैं; ग्रामीण लघु और

कुटीर उद्योगों का विकास कर लोगों की रूढ़िवादी मनोवृत्ति को बदल सकते हैं। ये नौजवान ही गांव की खुशहाली को लौटा सकते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्य रूप से दो तरह के बेरोजगार हैं – अशिक्षित तथा शिक्षित।

अशिक्षित बेरोजगार

ग्रामीण बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि है। शिक्षा का अभाव, धार्मिक कट्टरता, रूढ़िवादिता तथा गरीबी के कारण ये परिवार नियोजन नहीं करा पाते, जिससे इनकी जनसंख्या अवाध गति से बढ़ती जा रही है। अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में भी मृत्यु–दर में तेजी से कमी आई है। चूंकि जन्म–दर विकसित देशों में भी कुछ अन्तराल के बाद गिरती है इसलिए भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या वृद्धि की दर का तेजी से बढ़ना स्वाभाविक है। भारत के ग्रामीण इलाकों में साक्षरता बहुत कम रही है इसलिए यहां जनसंख्या विस्फोट असाधारण ढंग से होना ही था। लेकिन जिस घटक ने सबसे अधिक कठिनाई उत्पन्न की है वह लोगों की निर्धनता और उसी से जुड़ा हुआ उनका अन्धविश्वास है। जनसंख्या नियंत्रण के लिए साक्षरता आवश्यक है परंतु यही पर्याप्त नहीं है। अच्छे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्था को ही अनुकूल बनाना होगा।

जनाधिक्य के कारण मध्यवर्गीय परिवार टूट रहे हैं। उनकी जोत विखण्डित हो रही हैं। घटती प्रति व्यक्ति जोत का क्षेत्रफल और उससे निपटने के लिए पूंजी और प्रौद्योगिकी के अभाव की समस्या के कारण बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। जनसंख्या वृद्धि के साथ भूमि की कुल मात्रा तो नहीं बढ़ती, चाहे जोत के क्षेत्रफल में कुछ सीमान्त परिवर्तन हो जाएं। 1961 में प्रति व्यक्ति बोया गया क्षेत्रफल 0.3697 हेक्टेयर था, जो 1971 में 0.3207, 1979 में 0.2841, 1981 में 0.2691 और 1986 में 0.2473 रह गया। भूमि की कमी को पूरा करने के लिए पूंजी का उपयोग आवश्यक हो गया है अर्थात नई प्रौद्योगिकी और अधिक पूंजी लगाए बगैर बेरोजगारी को रोकना कठिन लगता है। प्रशासनिक अकुशलता, रोजगार से सम्बद्ध कार्यालयों में घूसखोरी, पैरवी, नक्सलवाद का उपद्रव भी बेरोजगारी में वृद्धि का कारण बना हुआ है। जब तक हम मध्यवर्गीय किसानों की सुरक्षा, संरक्षण तथा उत्थान करने में समर्थ नहीं होते तब तक अनुसूचित जाति, जनजाति के लोगों के उत्थान करने की बात महज पानी में कागज की नाव दौड़ाने के समान होगी। जबसे मध्यवर्गीय किसान अपने घर का दरवाजा शाम होते बन्द करने लगे हैं, खेत बटाई पर देकर शहर की ओर पलायन करने लगे हैं, निजी हथियार बन्द सेनाएं एक दूसरे की खून की प्यासी हो गई हैं, तब से दोनों वर्गों में बेकारी बढ़ी है। सबसे निचली सीढ़ी के लोगों में बड़े पैमाने पर बेकारी बढ़ी है। बटाईदारी पर खेती करने वाले पिछड़े वर्ग के लोग अपने काम पर मजदूर नहीं लगाते। वे अपने खेत–खलिहान में अपनी पत्नी, बेटा–बेटी, पतोहू, सम्बन्धी को लेकर अपना कृषि–कार्य सम्पन्न कर लेते हैं जिससे इनकी पर्याप्त बचत हो जाती है, परंतु मजदूर वर्ग को महानगरों की ओर पलायन होने को बाध्य होना पड़ रहा है। इनमें कुछ का पलायन प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है। ये शहर के कारखानों में, बड़े–बड़े होटलों में काम करते हैं। इन्हें 1500 रुपये से 2000 रुपये तक मासिक आय हो जाती है। जब ये अपने गांव लौटते हैं तो विशेष तैयारी के साथ। इन्हें देखकर सामान्य मजदूर आकर्षित होते हैं और शहर जाने को मन बना लेते हैं। परंतु 80 प्रतिशत ग्रामीण बेरोजगारों को शहर में शोषण, कुपोषण के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। शहरी चकाचौंध इन्हें सदा–सदा के लिए बर्बाद कर देती है। मजदूरों को दो जून पेट भर भोजन जुटाना भी मुश्किल हो जाता है। परिणामतः इनके बच्चे संतुलित आहार के अभाव में कमजोर होते हैं। इन्हें जवानी मिल नहीं पाती, काम के बोझ से दब जाते हैं और गरीब के गरीब बने रहते हैं। यही चक्र इनके जीवन में चलता रहता है। इन्हें शहरों के कल–कारखानों, ईंटों के भट्टों तथा ऊंची–ऊंची इमारतों के निर्माण में काम करते देखा जा सकता है। इनके हड्डीनुमा शरीर को देखकर अनुमान लगा सकते हैं कि इन्हें किस तरह का रोजगार मिला हुआ है।

शिक्षित बेरोजगार

ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार आज स्नातक, स्नातकोत्तर की डिग्रियां लेकर शहरों के निजी विद्यालयों, महाविद्यालयों में 500 रुपये से भी कम मासिक वेतन पर कार्यरत हैं जबकि ग्रामीण मजदूर 50 रुपये प्रतिदिन से कम मजदूरी पर काम करना हीं नहीं चाहता। आज के शिक्षित बेरोजगार युवकों का भी शोषण तरह–तरह से किया जाता है। उनके परिश्रम का, उनकी प्रतिभा का उचित पारिश्रमिक न देकर प्राप्त डिग्रियों का मजाक उड़ाया जाता है।

प्रायः देखा जाता है कि जब ग्रामीण युवक थोड़ी भी शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो गांवों में रहना ही नहीं चाहता। शहरों की सुख–सुविधाएं उसे आकर्षित करने लगती हैं। ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार नौकरी की तलाश में शहरों, नगरों तथा महानगरों में भटकते हैं। यह भी सत्य है कि वह हाथ जो 25–30 वर्ष की उम्र तक किताब और कलम से खेला, फिर एकाएक चिलचिलाती धूप में कुदाल से कैसे खेल सकता है। अतः कृषि कार्य में बोझ मानना उनके लिए स्वाभाविक ही है। कृषि कार्य में वे लोग तो जाते हैं, लेकिन इससे इनकी

उपयोगिता नगण्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में उन्हीं परिवारों की स्थिति ठीक है जिनके यहां कृषि और नौकरी दोनों हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं की कमी

ग्रामीण समाज का एक छोटा वर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है जिसकी आय पर्याप्त है, वह अच्छी बचत भी कर लेता है, परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में बसे होने के कारण उसे विनियोग के अवसर नहीं मिल पाते। इतना ही नहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा, विद्युत, यातायात, पेयजल, अच्छे–अच्छे विद्यालय, महाविद्यालय, संचार तथा मनोरंजन के साधन जैसी आधारभूत सुविधाओं का घोर अभाव है। फलतः शिक्षित बेरोजगारों तथा सम्पन्न वर्ग के लोगों को जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। गांवों में रहकर वे अपने भविष्य को अन्धकारमय महसूस करते हैं। गांवों में इन आधारभूत सुविधाओं के अभाव के कारण शिक्षित बेरोजेगार ग्रामीण परिवेश में उद्योग स्थापित करना नहीं चाहते। साथ ही शहरों में वे बड़े–बड़े पूंजीपतियों के सामने टिक नहीं पाते।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार ने स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ही गंभीर प्रयास प्रारम्भ कर दिए थे। यह महसूस किया गया कि गरीबी हटाने की स्थायी नीति विकास की प्रक्रिया में ही उत्पादक रोजगार अवसरों में वृद्धि पर आधारित होनी चाहिए। चूंकि ग्रामीण विकास का अर्थ लोगों की आर्थिक उन्नति तथा वृहत सामाजिक परिवर्तन दोनों है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय अपने विभिन्न कार्यक्रमों यथा, स्वरोजगार, मजदूरी रोजगार, ग्रामीण आवास और विशेष क्षेत्र विकास पर केन्द्रित योजनाओं को चला रहा है। रोजगारोन्मुख योजनाए निम्न हैं :

स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना का उद्देश्य ग्रामीण गरीबों के लिए आय सृजक परिसम्पतियों और स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। लक्षित समूह में छोटे और सीमान्त किसान, कृषि श्रमिक और ग्रामीण कारीगर आदि आते हैं, जिनकी वार्षिक पारिवारिक आय 1991–92 की कीमतों के आधार पर 11,000 रुपये की गरीबी रेखा से अधिक नहीं है।

नवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में ग्रामीण विकास पर 90,000 करोड़ रुपये खर्च करने की बात कही गई। स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना 1999 में लागू की गई। इसके तहत पुराने कार्यक्रम जैसे – समन्वित ग्रामीण विकास योजना, ट्राइसेम, डवाकरा, गंगा कल्याण येाजना, दस लाख कुओं की योजना तथा सिटरा का इसमें विलय कर दिया गया। एक अप्रैल 1999 से जो ग्रामीण विकास के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, वे हैं – जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल योजना, ग्रामीण आवास योजना, ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम, राष्ट्रीय वृद्ध पेन्शन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना।

भूमि संसाधनों से सम्बद्ध कार्यक्रमों में जो प्रमुख हैं, वे हैं – डी.पी.ए.पी., डी.डी.पी., वेस्टलैन्ड डेवलपमेंट तथा भूमि सुधार। इन कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने के लिए

स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण द्वारा ग्रामीणों को रोजगार देने का प्रयास

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा कपार्ट के माध्यम से अन्य तकनीकी और आर्थिक सहायता मुहैया कराने की व्यवस्था की है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना 1989 में प्रारम्भ की गई जवाहर रोजगार योजना का संशोधित रूप है। अब ग्राम पंचायतें 50,000 रुपये तक की परियोजनाओं को लागू करने का फैसला लेने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें इसके लिए किसी प्रकार की तकनीकी या प्रशासनिक मंजूरी की आवश्यककता नहीं होती है। परंतु 50,000 रुपये से अधिक की परियोजनाओं के लिए ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा की मंजूरी लेने के अलावा उपयुक्त अधिकारियों से तकनीकी तथा प्रशासनिक मंजूरी लेनी होती है। यह योजना गांवों में रोजगार सृजन में सक्षम है। यह इस बात से स्पष्ट है कि अक्टूबर 1999 के सात महीनों में 947.54 लाख मानव दिवस के रोजगार के सृजन की सूचना प्राप्त हुई है।

पिछले 20 वर्षों में शहरों, नगरों की संख्या तथा उसकी आबादी में काफी वृद्धि हुई है। महानगरों की आबादी 12 करोड़ तक पहुंच गई। इस वृद्धि का एकमात्र कारण ग्रामीण बेरोजगारी में बेतहाशा वृद्धि तथा उसका शहरों की ओर पलायन है। यदि देश की परिस्थितियां अनुकूल हों तो शहरीकरण बहुत हद तक लाभकारी सिद्ध हो सकता है लेकिन हमारे यहा गांवों से शहरों की ओर पलायन का परिणाम बहुत भयावह दृष्टिगत हो रहा है। बेरोजगारी में वृद्धि तथा उसके पलायन से ग्रामीण अर्थव्यवस्था विनाश के कगार पर पहुंच चुकी है। कृषि मजदूरों के पलायन से कृषि उत्पाद में गिरावट आई है। उत्पाद की लागत में वृद्धि हुई है। कृषि के प्रति रुचि में ह्रास हुआ है। जोतों का उचित विदोहन नहीं हो पाता।

ग्रामीण बेरोजगारी से निपटने के उपाय

महात्मा गांधी ने कहा था – "भारत का मोक्ष लघु एवं कुटीर उद्योगों में निहित है।" यदि हम वास्तव में ग्रामीण विकास करना चाहते हैं, ग्रामीण बेरोजगारों के चुनौतीपूर्ण पलायन को रोकना चाहते हैं तो गांधीयन माडल पर आधारित लघु और कुटीर उद्योगों का जाल बिछाना होगा। कुटीर उद्योगों की क्षमता और उत्पादकता बढ़ाने में जो भी हमारी परम्परागत उत्पादन विधियां हैं उनमें नए शोध की जरूरत है। नए शोध से छोटे तथा कुटीर उद्योगों में रोजगार बढ़ सकता है। छोटे और कुटीर उद्योगों तथा खेती की उत्पादकता को बढ़ाने से सम्बन्धित शोध पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए। शोधपरक उद्योगों का विस्तार ग्राम स्तर पर करना होगा। प्रखण्ड–स्तर पर शीत भंडारों का निर्माण तथा नियमित विद्युत आपूर्ति करनी होगी। बेरोजगारों को प्रोत्साहित कर इन उद्योगों में प्राथमिकता देनी होगी। तभी गांव की बेकारी दूर होगी, लोगों को अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होगी। साथ ही तमाम आधारभूत सुविधाओं यथा – शिक्षा, चिकित्सा, बिजली, परिवहन, संचार, शुद्ध पानी, विद्यालय, महाविद्यालय, तकनीशियन, मनोरंजन के साधन आदि जो शहरों में उपलब्ध हैं, सुदूर गांवों में उपलब्ध कराने होंगे।

ग्रामीण बेरोजगारी का एक महत्वपूर्ण कारण आर्थिक और सामाजिक असमानता भी है। अमीरों और गरीबों के बीच खाई और गहरी होती जा रही है। एक के पास पर्याप्त मात्रा में भूमि तथा पूंजी है तो दूसरे के पास सिर्फ दो कमजोर हाथ। भारतीय रिजर्व बैंक के एक सर्वेक्षण के अनुसार निम्नतम 10 प्रतिशत ग्रामीणों का कुल ग्रामीण सम्पत्ति में केवल 0.1 प्रतिशत हिस्सा है जबकि उच्चतम 10 प्रतिशत ग्रामीण कुल सम्पत्ति के 50 प्रतिशत से अधिक के स्वामी हैं। इतना ही नहीं, सामाजिक रूप से भी ये उपेक्षित हैं। अतः ग्रामीण बेरोजगारी को रोकने के लिए आर्थिक, सामाजिक विषमता को दूर करना होगा तभी ग्रामीणों के आर्थिक और सामाजिक जीवन में संतुलन स्थापित हो पाएगा तथा देश खुशहाल दिखेगा।

ग्रामीण बेरोजगारों की उस मानसिक प्रवृत्ति को बदलना होगा जो शहर में बाबू बनने की हो गई है। उन्हें गांधी जी के स्वालम्बन के मंत्र को पिलाना होगा तथा उसके दिल और दिमाग को गांवों के विकास के प्रति जागरूक करना होगा। यदि उनके स्वस्थ मस्तिष्क को गांव के विकास की मुख्य धारा से जोड़कर मत्स्य पालन, सूअर पालन, मुर्गीपालन तथा लघु और कुटीर उद्योगों जैसे टोकरी बुनना, चटाई बनाना, पत्तल बनाना, लोहे के कृषि औजार बनाना साबुन बनाना, सलाई बनाना, अगरबत्ती बनाना, खिलौना बनाना, डेयरी उद्योग, सिलाई सेन्टर, चमड़े का समान, गुड़ बनाना, वैज्ञानिक तरीके की खेती, विशेष रूप से फूलों की खेती, औषधि पौधों की खेती, दलहन, तिलहन तथा किराना वस्तुओं की खेती करने की सलाह दी जाए तथा उसके लिए उपयुक्त उपकरण तथा वित्त की व्यवस्था की जाए तो गांव में ही रोजगार पैदा होगा और शिक्षित लोगों की भी बेरोजगारी गांव में ही दूर हो जाएगी। चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। अतः हमारी शिक्षा नीति भी कृषि पर आधारित होनी चाहिए। कृषि को रोजगारोन्मुख व्यवसाय के रूप में विकसित करना होगा। इससे ग्रामीण बेरोजगारों को शिक्षा–प्राप्ति के बाद शहरों में नहीं भटकना पड़ेगा तथा गांव में ही इन्हें रोजगार प्राप्त हो जाएगा। लेकिन आज कृषकों की स्थिति यह है कि इनकी कृषि पेट भरने का उपाय मात्र है। यदि कहा जाए कि भारतीय कृषक कमाने के लिए जीते हैं और जीने के लिए कमाते हैं तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः भारतीय कृषकों को उनके उत्पाद का लाभकारी मूल्य उपलब्ध कराना होगा, बिचौलियों के चंगुल से मुक्ति दिलानी होगी। आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक तथा वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराने के साथ–साथ प्रशिक्षण भी देना होगा तथा उनके उत्पाद की बिक्री के लिए एक सुसंगठित बाजार की व्यवस्था करनी होगी।

गांवों में फैली गन्दी राजनीति ने भी ग्रामीण परिवेश को विषाक्त बना दिया है। सहयोग तथा भाईचारे की भावना समाप्त हो गई है। आर्थिक मूल्य प्रधान हो गए हैं। गांव के आर्थिक विकास के लिए स्वस्थ वातावरण का पुनः निर्माण करना होगा। गांव के लोगों को शिक्षित कर ग्रामीण बेरोजगारों को रचनात्मक कार्यों में लगाना होगा, अन्यथा अपराध की प्रवृत्ति बढ़ती ही जाएगी। यानी जब तक ग्रामीण बेरोजगारी रहेगी, आतंकवाद, नक्सलवाद समाप्त नहीं हो सकता।

इस प्रकार ये व्यवस्थाएं ग्रामीण बेरोजगारी को रोक सकती हैं। उनके सपनों को सकार बना सकती हैं। सिर्फ जरूरत है इन्हें उत्साहित और प्रोत्साहित करने की। सरकार के साथ–साथ स्वयंसेवी संस्थाओं को भी रचनात्मक कार्यों में योगदान देना चाहिए। ❑

महिलाएं और ग्राम सभा

महिला सशक्तिकरण दिवस की रिपोर्ट

डा. महीपाल

"यह मेहनत और एकता का फल है। मैं बोल नहीं पाती थी क्योंकि घर में ही रहती थी। किसी भी कार्य से घर से बाहर जाना मना था। लोगों ने कहा कि मैं चुनाव लड़ूं। मैं अंगूठा छाप थी। घर की अनेक समस्याओं में घिरी रहती थी। जब यह पता चला कि मैं ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ रही हूं तो घर में बहुत जोर का हंगामा हुआ। लांछन लगाया गया कि यदि मैं ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ना चाहती हूं तो इसका अर्थ हुआ कि मैं पुरुषों की 'कम्पनी' में रहना चाहती हूं।" यह बात श्रीमती नाथु बेगम प्रधान ने 24 अप्रैल को दिल्ली के कन्सटीट्यूशनल क्लब में सामाजिक विज्ञान संस्थान द्वारा आयोजित महिला सशक्तिकरण दिवस के दौरान कही। श्रीमती नाथु बेगम को ग्राम पंचायत प्रधान की हैसियत से प्रशंसनीय कार्य करने के लिए सामाजिक विज्ञान संस्थान द्वारा सम्मानित किया गया। वह कहती हैं कि "सुनने में आया है कि गांव में एक रुपये में से 15 पैसे ही पहुंचते हैं। हमने सोचा ग्राम पंचायत प्रधान बनकर पूरा का पूरा रुपया गांव के विकास में लगाया जाए। दूसरी महिला पूर्व अध्यक्ष अनकस ताल्खा, जिला बंगलौर (कर्नाटक) की आस्थमानारायण रेड्डी थी। उन्हें भी पंचायत में सराहनीय कार्य करने के लिए सम्मानित किया गया। श्रीमती रेड्डी कहती हैं कि वह अपने कार्य के कारण पंचायत अध्यक्ष बनी। लेकिन उसके सामने समस्या उसके अनुसूचित जाति की होने के कारण आई। वह कहती हैं कि मेरा उपाध्यक्ष ऊंची जाति का था इसलिए वह कभी भी बैठक में नहीं आया। कारण उसे नीचे की जाति की महिला की अध्यक्षता में बैठक में बैठना मंजूर नहीं था। श्रीमती रेड्डी पासवानी महिला फेडरेशन की अध्यक्षा हैं। इस स्वैच्छिक संस्था से उसने अनपढ़ महिलाओं के लिए वोकेशनल ट्रेनिंग शिविर चलाए। उसने गांव में महिलाओं के लिए अनेक स्वयं सहायता समूह बनवाया।

इसी तरह के अनुभव देश के विभिन्न राज्यों से आईं लगभग 260 महिला पंचायत प्रतिनिधियों ने दो दिवसीय महिला सशक्तिकरण दिवस पर रखे। सामाजिक विज्ञान संस्थान हर वर्ष 24 अप्रैल को महिला सशक्तिकरण दिवस मनाता है क्योंकि इसी दिन 73वां संविधान संशोधन लागू हुआ था जिसके तहत महिलाओं के लिए पंचायतों में एक तिहाई पद आरक्षित किए गए थे। हर वर्ष अलग–अलग विषय होता है। इस वर्ष

का विषय 'महिलाएं और ग्राम सभा' था।

समारोह का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष विभा पार्थसारथी ने कहा कि वर्षों से महिलाएं पुरुष–प्रधान सामाजिक बंधन में बंधी रहीं। अधिकार सिर्फ कागज पर मिला है। अगर महिलाएं स्वयं आगे नहीं आएंगी तो अधिकार कागजों तक ही सिमट कर रह जाएंगे। प्रसिद्ध लेखिका कृष्णा सोबती ने अपने विचार रखते हुए कहा कि स्त्री होने की सजा महिलाएं वर्षों से भुगत रही हैं, लेकिन आज उससे बाहर निकल आने की पूरी छटपटाहट हैं। निरक्षरता महिलाओं के लिए सबसे बड़ी बाधा है। समता पार्टी की अध्यक्ष सुश्री जया जेटली ने कहा कि देश में कानून अंग्रेजों के हितों को ध्यान में रखकर बनाए गए थे जिनका प्रयोग आज भी अधिकारीगण अपने हित के लिए कर रहे हैं। उन्होंने कहा जब तक महिलाएं अपनी पहचान स्वयं नहीं बनाएंगी तब तक उनका विकास नहीं होगा। आर्थिक विकास संस्थान की प्रोफेसर बीना अग्रवाल ने महिलाओं के विभिन्न सम्पति अधिकारों की चर्चा की। उन्होंने कहा कि सामाजिक परिवार से धन तथा सम्पत्ति मांगना कैसे संभव है। असुरक्षा का सवाल है। इस पर जिला रिवाड़ी (हरियाणा) के एक गांव की सरपंच श्रीमती यादव, जो सामान्य सीट से सरपंच चुनकर आई हैं, ने वास्तविक सच्चाई की ओर इशारा करते हुए कहा कि धन और जयदाद के लोकतंत्रीकरण के लिए जरूरी है दहेज प्रथा समाप्त हो।

फिर चर्चा पांच समूहों के माध्यम से हुई। ये पांच समूह थे – महिला व सामाजिक विकास, महिला ग्राम सभा व सोशल आडिट, महिला ग्राम सभा व विकेन्द्रीकृत योजना, महिला ग्राम सभा व संसाधन तथा ग्राम सभा व ग्राम पंचायत। इन समूहों में महिलाओं ने ग्राम सभा की कम लेकिन अपनी समस्याएं अधिक रखीं तथा अब तक उन्होंने पंचायतों के माध्यम से जो कार्य किया है उसका ब्यौरा दिया। अलवर जिले से आई कामनी देवी सरपंच दुःखी थीं। वह तीन दर्जे पढ़ी हैं। वह जानती हैं कि पंचायत से संबंधित निर्णय उसे लेने हैं। लेकिन प्रधान बनते ही वह बेबस हो गई थीं क्योंकि पंचायत के पुरुष सदस्यों और उसके परिवार ने निर्णय ले लिया था कि कामनी देवी नाम मात्र की प्रधान रहेगी। मजे की बात है कि सभी बैठकें उसके द्वारा ही निर्धारित की जाती हैं लेकिन वह चाहते हुए भी बैठक में भाग नहीं ले पाती हैं। उसके रास्ते में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां खड़ी कर दी जाती हैं। वह कहती है कि अगली बैठक गांव से 8 किलोमीटर दूर रखी है, वह भी रात को 8 बजे। भला मेरे लिए वहां जाना कैसे सम्भव है?

"मैं बहुत परेशान हूं क्योंकि कोई भी पुरुष मुझे गांव के विकास कार्य में शामिल नहीं करता। कर्नाटक राज्य से आई 21–वर्षीय सरपंच सावित्री कहती है कि वह अपने क्षेत्र की सबसे युवा महिला सरपंच है। वह सभी की नाराजगी के बावजूद सरपंच बनीं। लेकिन अब उसके सामने सबसे बड़ी समस्या है उसका पति जिसने कह दिया था कि मेरे व सरपंच में से एक को चुन लो।

हरियाणा से आई महिलाओं ने कहा कि पुरुषों की तुलना में अनेक कारक उनके खिलाफ हैं। शिक्षा की दृष्टि से वे हमसे आगे हैं। सुरक्षा का खतरा उनको नहीं है। लेकिन गांव की समस्या व उनके समाधान के बारे में हम उनसे कम नहीं हैं। हमको पता है नलकूप कहां लगाना है। हमको पता है कि गरीब कौन है?

सम्मेलन से मुख्य सिफारिशें जो उभर कर आईं वे हैं :–

- पंचायत के सभी फण्ड ग्राम सभा को हस्तांतरित होने चाहिए। कौन–कौन–सी स्कीम के अंतर्गत कितनी राशि आती है इसकी जानकारी ग्राम सभा को दी जाए।
- महिलाओं का ग्राम सभा के फोरम में आरक्षण होना।
- ग्राम सभा द्वारा लाभार्थियों का चयन करना।
- परिवार की भूमि, धन व सम्पत्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी।
- महिलाओं के "स्वयं सहायता" समूहों का गठन।
- ग्राम सभा का केरल "माडल" सभी राज्यों को अपनाना।
- अखिल भारतीय महिला प्रतिनिधि एसोशियन का गठन।

समारोह का प्रभाव यह पड़ा कि राजस्थान के झुंझुनु जिले से आई महिला सरपंचों ने वापस जाकर *राजस्थान पत्रिका* को बताया कि सम्मेलन में भाग लेने से उनका उत्साह बढ़ा है तथा अन्याय के खिलाफ लड़ने का उनका इरादा और मजबूत हुआ है। उनमें विश्वास आया है और अब वे अच्छे ढंग से पंचायत का कार्य कर सकेंगी।

लेखक 1995 से महिला सशक्तिकरण दिवस में भाग लेता आया है। प्रत्येक वर्ष महिलाओं में अधिक जागरूकता व उत्साह पाया जाता है। अच्छा होगा कि इस तरह के सम्मेलन राज्य क्षेत्र तथा जिला स्तर पर भी हों ताकि महिलाओं में जागृति बढ़े।

केन्द्र सरकार, राज्य सरकार व विभिन्न राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जो पंचायतों के विकास में कार्य कर रही हैं, को ज्यादा जोर जागरूकता अभियान व पंचायत प्रतिनिधियों की क्षमता बढ़ाने पर देना चाहिए। केन्द्र सरकार इसके लिए प्रशिक्षण व क्षमता नीति बनाए तो बेहतर होगा। पंचायत प्रतिनिधि जब जागरूक व सक्षम हो जाएंगे तो वे स्वयं ही राज्य सरकारों व केन्द्र सरकार से संवैधानिक अधिकार व शक्तियों की मांग करेंगे। जागरूकता के अभाव में अधिकार व शक्तियों के लिए जमीनी स्तर से मांग नहीं उठती है। ❑

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली–110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को उस अंक की एक प्रति भेजी जाएगी जिसमें उनके विचार प्रकाशित होंगे।

— सम्पादक

ग्राम विकास में न्याय पंचायतों की भूमिका

डा. सुरेन्द्र कटारिया

हमारे देश में पंचायतों द्वारा न्याय यानी पंच परमेश्वर की प्रथा प्राचीन समय से रही है। लेखक ने बताया है कि हालांकि 73वें संविधान संशोधन में इन पंचायतों का कोई प्रावधान नहीं है लेकिन मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश और पंजाब में आज भी न्याय पंचायतें हैं। आज जबकि न्यायालयों में करोड़ों मामले लम्बित पड़े हैं और इनमें से तीन चौथाई ग्रामीणों द्वारा दायर हैं, ऐसे में अगर पंचायतों को न्याय का अधिकार दे दिया जाए तो इससे शहरी अदालतों पर काम का बोझ घटेगा, लोगों को न्याय जल्दी मिलेगा और विकास कार्यों में जन सहभागिता बढ़ेगी।

राजस्थान के अलवर जिले के हुड़ियाकलां गांव में 20 मई 2000 को सैकड़ों ग्रामीणों ने मिलकर गांव के कुख्यात अपराधी गोपी और उनके परिवार के पांच अन्य सदस्यों को पीट–पीट कर मार डाला। तीन हत्याओं तथा चौदह संगीन अपराधों में लिप्त गोपी ग्रामीणजनों में आतंक का पर्याय बन चुका था। निष्क्रिय पुलिस तथा शिथिल न्याय–प्रणाली के चलते ग्रामीण स्वयं ही समस्या को समूल नष्ट करने को विवश हुए। यह घटना सर्वथा नई नहीं है। ऐसी घटनाएं राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरिणाणा तथा उत्तर प्रदेश में पहले भी हो चुकी हैं। एक अन्य घटना माह मार्च 2000 की है। आगरा जनपद के नगला भुजा गांव में दो मासूम बच्चों की मां सुखवीरी को मौत के मुंह में धकेलने से क्षुब्ध होकर जाट महापंचायत ने समूचे गांव को दण्डित किया और महीनों तक इस गांव को सामाजिक बहिष्कार के कारण चिकित्सा, दूध, परिवहन तथा घरेलू सामान मिलना दूभर हो गया था। आस–पास के गांव वालों ने नगला भुजा के वासियों से नाता ही तोड़ लिया था। यहां यह बात समझ में आती है कि परम्परागत भारतीय ग्रामीण समाज की मान्यताएं तथा सामाजिक मूल्य ज्यों के त्यों बरकरार हैं। दूसरी ओर लोक प्रशासन तथा न्यायिक तंत्र की कमियां भी हमारे सामने हैं। अतः उचित यही लगता है कि गांवों की परम्परागत 'न्याय पंचायत' को आधुनिक स्वरूप में ढाल दिया जाए ताकि इसका सदुपयोग किया जा सके। चूंकि ग्रामीण समाज अपनी परम्पराएं शीघ्रता से नहीं छोड़ता है, अतः उपयोगी परम्पराओं को कानूनी जामा पहनाना ही श्रेयस्कर है।

देश भर में प्रवर्तित प्रशासनिक कानूनों की समीक्षा हेतु 1998 में गठित किए गए आयोग (पी. जैन., अध्यक्ष) की रिपोर्ट के अनुसार भारत की विभिन्न अदालतों में 2 करोड़ 80 लाख मुकदमे बरसों से विचाराधीन हैं। राजस्थान उच्च न्यायालय के अधीन एक लाख सात हजार तथा अकेले जयपुर शहर की अदालतों में 95 हजार मुकदमे लम्बित पड़े हैं। ऐसी ही स्थिति राजस्व मंडल से सम्बद्ध अदालतों की है। यहां भूमि तथा काश्तकारी से सम्बन्धित हजारों मामले फैसले की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वस्तुतः भारतीय अदालतों में अधिसंख्य मुकदमे भूमि, सम्पत्ति, लेन–देन, आपसी कहा–सुनी और प्रशासनिक अकर्मण्यताओं से सम्बन्धित हैं। इनमें तीन चौथाई से भी अधिक मुकदमे ग्रामीण जनता द्वारा दायर किए जाते हैं। स्पष्ट है न्यायालयों की लम्बी, दुरूह तथा श्रमसाध्य प्रक्रिया के कारण वादी और प्रतिवादी पक्ष बरसों तक मानसिक तनाव और आर्थिक हानि का सामना करते हैं। गांव का गरीब, निरक्षर तथा सीधा–सरल किसान या श्रमिक दीर्घकाल तक न्याय की प्रतीक्षा में अपना

मूल्यवान समय और धन व्यय करता है। इस समस्या से मुक्ति पाने का एकमात्र रास्ता यही है कि परम्परागत न्याय पंचायतों को पुनर्जीवित किया जाए और अधिकार–सम्पन्न बनाया जाए।

भारत में न्याय पंचायतों की अवधारणा नई नहीं है बल्कि प्राचीनकाल से ही गांव आत्मनिर्भर इकाई रहे हैं। मौर्यकाल, गुप्तकाल, मुगलकाल तथा ब्रिटिश काल में भी ग्रामवासी आपसी विवाद मिल बैठकर सुलझाते रहे हैं। सन् 1959 में शुरू हुए पंचायती राज के पश्चात आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, जम्मू–कश्मीर, केरल तथा पश्चिमी बंगाल ने न्याय पंचायतों के बारे में वैधानिक प्रावधान किए थे किन्तु इनका गठन नहीं हुआ जबकि बिहार, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, सिक्किम, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में इन न्याय पंचायतों का गठन किया गया था। 73वें संविधान संशोधन द्वारा ग्राम पंचायतों, ग्रामसभा, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् को संवैधानिक स्तर प्रदान कर दिया गया है किन्तु इस अधिनियम में 'न्याय पंचायतों' के गठन का प्रस्ताव नहीं है।

इसी का परिणाम है कि राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 द्वारा न्याय पंचायतों का पूर्व (1953) प्रावधान हटा दिया गया। वर्तमान में केवल मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब में ही न्याय पंचायतें कार्यरत हैं। बिहार में इन्हें 'ग्राम कचहरी' नाम दिया गया है जो बिहार पंचायत अधिनियम 1993 के अन्तर्गत वैधानिक और अधिकार सम्पन्न निकाय हैं। बिहार में न्याय पंचायतों के समक्ष विचाराधीन मामलों को किसी अन्य अदालत में नहीं ले जाया जा सकता। ग्राम कचहरी के निर्णय के पश्चात अन्य न्यायालयों में इसका अभिलेख मंगाए जाने का प्रावधान है। यद्यपि बिहार में यह प्रावधान बहुत कारगर प्रतीत होता है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वहां एक दशक से ग्राम पंचायतों के चुनाव तक नहीं हुए हैं।

मध्य प्रदेश में "मध्य प्रदेश ग्राम न्यायालय अधिनियम 1996" द्वारा दस ग्राम पंचायतों के लिए एक सात–सदस्यीय ग्राम न्यायालय की व्यवस्था की गई है। इसमें अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति तथा महिलाओं के लिए चार स्थान आरक्षित हैं। न्यूनतम आठवीं पास से विधि स्नातक डिग्रीधारी सदस्यों से युक्त यह ग्राम पंचायत कतिपय कानूनों के अन्तर्गत सुनवाई करने के लिए एक दण्ड न्यायालय बनाई गई है।

अधिकांश राज्यों में विगत चार दशक में न्याय पंचायतें निष्क्रिय बनी रही हैं अथवा आम जनता में इनके प्रति पूर्ण आस्था नहीं पनप सकी है। ऐसा पंचायती राज संस्थाओं के राजनीतिकरण तथा गुटबाजी के कारण हुआ है अन्यथा आज भी ग्रामीण भारत में 'जाति पंचायतें" सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। गांवों में स्थित ये जाति पंचायतें किसी एक गांव या आस–पास के क्षेत्र के अनुसार अनौपचारिक रूप से गठित होती हैं तथा विवाह, लेन–देन, रीति–रिवाज और अन्य गंभीर मुद्दों पर अपना दृष्टिकोण निश्चित करती हैं। कहना न होगा कि आज भी जाति पर पंचायतों का नैतिक दबाव और बाध्यता आम भारतीय द्वारा सहजता से स्वीकार्य है।

इसी प्रकार गांव के बड़े–बुजुर्गों तथा पंच–सरपंच से युक्त न्याय पंचायत भी स्थानीय विवादों को निपटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। न्याय पंचायतों के वास्तविक अस्तित्व के बिना भी गांवों में पड़ौसियों के झगड़े, खेती के झगड़े तथा भाइयों के बीच सम्पति का विवाद अधिकांशतः स्थानीय पंचायत द्वारा ही सुलझाए जा रहे हैं।

न्याय पंचायतों की स्थापना करने, उन्हें वैधानिक अस्तित्व प्रदान करने तथा अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए अनेक समितियों ने अनुशंसाएं की हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से लेकर भारतीय पुलिस आयोग (1902), अशोक मेहता कमेटी (1977), न्यायमूर्ति पी..एन. भगवती समिति (1977), 14वां विधि आयोग, तथा जी. आर. राजगोपाल अध्ययन दल (1962) तक ने न्याय पंचायतों की स्थापना का सुझाव सरकार को दिया है किन्तु इस दिशा में गंभीरतापूर्वक प्रयासों का सर्वथा अभाव रहा है। वस्तुतः पंचायती राज की सफलता भी दो प्रमुख आधारों पर टिकी है। एक तो यह कि स्थानीय जनता की समस्याओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति पंचायती राज कर सके ताकि जनता सहर्ष विकास कार्यों में सहभागिता प्रकट करे। दूसरा यह कि स्थानीय विवादों को यथासंभव ग्राम सभा, ग्राम पंचायत या न्याय पंचायत रुचि लेकर निष्पक्षतापूर्वक सुलझाए। मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी होता है अतः जब तक किसी व्यक्ति को प्रतिफल समझ में नहीं आ जाता जब तक वह रुचि एवं सहयोग प्रदर्शित नहीं करता है।

ग्रामीण विकास के बहु आयामी पक्षों यथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक कारकों के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि ग्रामीण जनता की शासन में सहभागिता बढ़ाई जाए। यह सहभागिता केवल वोट देने या बैठकों में उपस्थिति होने के बजाय निर्णयन प्रक्रिया से सम्बन्धित होनी चाहिए। यदि हम ग्राम पंचायत को शासन की मूलभूत तथा प्राथमिक इकाई मानकर उसे निर्धारित कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करें तो संभवतः उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न हो सकेगी तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को भी वास्तविक धरातल पर कार्यान्वित किया जा सकेगा। जब तक ग्राम पंचायतें शासन के तीनों अंगों जैसे– व्यवस्थापिका (ग्रामसभा), कार्यपालिका (ग्रामपंचायत) तथा न्यायपालिका (न्याय पंचायत) में विभक्त नहीं होंगी तब तक वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना असंभव है।

अतः ग्रामीण विकास को निर्बाध गति से आगे बढ़ाने, न्यायपालिका के कार्य बोझ को कम करने तथा आम जनता की शासन में सहभागिता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि ग्राम स्तर पर न्याय पंचायतों का गठन किया जाए। इन न्याय पंचायतों में पटवारी, ग्रामसेवक, सेवानिवृत्त अध्यापक, सेवानिवृत्त फौजी, वरिष्ठ नागरिक, महिला तथा युवकों को सम्मिलित कर ब्लाक स्तर पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। यह भी अनिवार्य कर देना चाहिए कि कुछ प्रकरण प्रथमतः न्याय पंचायतों के पास विचाराधीन एवं निर्णित होकर ही अन्य न्यायालयों में प्रस्तुत किए जा सकेंगे तभी ग्राम स्वराज का सपना साकार हो सकेगा। ❑

राजस्थान के गांवों में वार्ड सभाएं

डा. दौलत राज थानवी

राजस्थान में एक मई 2000 से 15 मई 2000 के बीच 9,813 ग्राम पंचायतों के एक लाख चार हजार के करीब वार्डों में वार्ड सभाओं का आयोजन किया गया। वार्ड सभा लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई है और इसमें उस वार्ड के सभी वयस्क स्त्री–पुरुष भाग ले सकते हैं। इन वार्ड सभाओं का उद्देश्य लोगों को सरकार की विकास योजनाओं की जानकारी देना था और नई विकास योजनाओं के लिए प्रस्ताव तैयार करना था। लेखक ने जोधपुर, बीकानेर, नागौर जिले की कुछ वार्ड सभाओं में पारित प्रस्तावों का ब्यौरा दिया है और बताया है कि किस तरह प्रतिकूल मौसम के बावजूद लोगों ने इन सभाओं में भाग लेकर जनता और सरकार की परस्पर सहभागिता से एक जन–क्रांति की शुरुआत की घोषणा की है।

राजस्थान सरकार ने राजस्थान पंचायती राज (संशोधन) अध्यादेश 6 जनवरी 2000 को पारित किया। इस अध्यादेश से ग्रामीण समुदाय के लागों को प्रत्यक्ष लोकतंत्र की दिशा में आगे बढ़ने का अवसर मिला है। ग्रामीण समुदाय के लोग स्वयं के सामुदायिक जीवन पर नियंत्रण करके इस अवसर को प्रत्यक्ष लोकतंत्र का साधन बना सकते हैं।

जनवरी 2000 के अध्यादेश के तहत एक मई से 15 मई 2000 की समयावधि में राजस्थान की 9,813 ग्राम पंचायतों के 1,03,712 वार्डों में वार्ड पंचों की अध्यक्षता में वार्ड सभाएं आयोजित की गईं। वार्ड सभाओं को स्थानीय स्वशासन के ढांचे की सबसे छोटी संवैधानिक इकाई घोषित किया गया है। वार्ड में समस्त वयस्क व्यक्तियों (नर व नारियों) को इन सभाओं में भाग लेने का अधिकार दिया गया है।

वार्ड सभाओं को सामाजिक अंकेक्षण करने का अवसर दिया गया है। वार्ड सभा में लोग ग्राम पंचायत द्वारा पारित प्रस्तावों और कराए गए कार्यों के विस्तृत अनुमानों की जांच कर उपयोगिता प्रमाण–पत्र जारी करने की अनुमति देते हैं। यही प्रत्यक्ष लोकतंत्र की प्रणाली है। सूचनाओं को प्राप्त करने और सुनवाई करने की प्रत्यक्ष लोकतंत्र की उत्प्रेरणात्मक व उपक्रमाकत्मक विधा है। इस विधा से वार्ड सभाएं प्राकृतिक संसाधनों, भू–अभिलेखों और सरकारी कर्मियों पर नियंत्रण करके आने वाले समय में शक्तिशाली हो सकेंगी।

इस परिप्रेक्ष्य में राजस्थान सरकार ने विभिन्न जिलों के लिए कार्यक्रम बनाए। स्थान, दिनांक और प्रभारी अधिकारियों का ब्यौरा समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया। विचार और चर्चा के लिए निम्नलिखित प्रमुख बिन्दु भी निर्धारित किए गए :

- विकास योजनाओं के लिए प्रस्ताव तैयार करना,
- सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त करना और लाभार्थियों की पहचान करना,
- विगत वर्षों के विकास कार्यों का सामाजिक अंकेक्षण करना तथा
- सभी के लिए शिक्षा और शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करने का संकल्प लेना।

पूरे राजस्थान राज्य में करीब एक लाख चार हजार के लगभग वार्डों में वार्ड सभाएं दस मई 2000 तक आयोजित की गईं। राज्य के कुछ जिलों की वार्ड सभाओं (श्री गंगानगर, बीकानेर, नागौर और जोधपुर) की सूचनाएं एकत्रित करके उनका तथ्यात्मक विश्लेषण किया गया कि वार्ड के लोगों ने किस प्रकार के प्रस्ताव रखे, स्थानीय संसाधनों को प्रबंधित करने के लिए क्या सुझाव दिए, प्रतिकूल परिस्थितियों में वार्ड सभाएं किस ढंग से आयोजित हुईं। मई माह की तपती दुपहरी में धूलभरी आंधियां चलती रहीं। इन प्रतिकूल परिस्थितियों और प्रत्यक्ष लोकतंत्र की स्थापना में क्या संबंध रहा, इसे भी विश्लेषण में शामिल किया गया। राज्य के उत्तर–पश्चिमी भाग के जिला श्रीगंगानगर से जानकारी मिली कि,

- बदन झुलसाने वाली गर्मी, लू की लपटों और खेतों में काम होने के कारण वार्ड सभाओं में गणपूर्ति (कोरम) पूरी नहीं रही।
- वार्ड सभाओं में विभिन्न विभागों के अधिकारियों (जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी और अतिरिक्त जिला कलेक्टर (विकास) ने भाग लिया। उन्होंने ग्रामीण जनों को विभिन्न विकास योजनाओं की जानकारी दी ताकि वे सूचना के अधिकार का प्रयोग कर सामाजिक अंकेक्षण कर सकें।

जोधपुर जिले के धुन्धड़ा ग्राम की पंचायत के विभिन्न वार्डों के लोगों ने उत्साह से वार्ड सभाओं में भाग लिया, जनहित के प्रस्तावों

को पारित किया। ये प्रस्ताव निम्नलिखित थे :

- गांव के वार्डों से अतिक्रमण हटाने का अभियान चलाया जाए,
- सामाजिक प्रदूषण को रोकने के प्रयास हों ताकि एड्स जैसी मृत्युदायी बीमारी न फैले। इसके लिए वेश्यावृत्ति पर नियंत्रण लगाना जरूरी है।
- पेयजल समस्या के स्थायी समाधान के लिए परम्परागत नाली–नालों, कुओं और बावड़ियों तथा घर–घर टेंकों की व्यवस्था को पुनर्जिवित किया जाए।
- वार्ड की विभिन्न गलियों के रास्ते ठीक किए जाएं तथा कन्याओं के लिए कन्या पाठशालाएं खोली जाएं।
- सामाजिक वानिकी से वृक्षारोपण कराएं।
- सार्वजनिक खेल–मैदान और सभा भवन निर्मित किए जाएं।
- शमशान घाट के लिए भूमि आवंटित कराने का प्रयास किया जाए।
- गरीबी के रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वाले लोगों की सूची की समीक्षा की गई और कहा गया कि जिन लोगों के पास टी.वी., मोटरसाईकिल, ट्रैक्टर, जीप, पर्याप्त भूमि, टेलीफोन और अन्य भौतिक संसाधन हैं उनके नाम गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की सूची से हटाए जाएं।
- चिकित्सा विभाग के डाक्टरों और कर्मचारियों को रात्रि में भी गांव में ठहरने को पाबंद करने की कार्यवाही करने का प्रस्ताव भी पारित किया गया।

स्थानीय ग्राम सेवक, कृषि पर्यवेक्षक, पटवारी, आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रभारी सहित विभिन्न विभागों के कर्मचारियों ने वार्ड सभाओं में भाग लिया। इन्होंने गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों, सामाजिक सुधारों, कृषि उत्पादन बढ़ाने व ग्राम में हुए विकास और खर्च की तथ्यात्मक जानकारियां वार्ड के लोगों को दीं।

बीकानेर क्षेत्र के जिलों की वार्ड सभाओं के समाचारों से जानकारी मिली कि वहां के लोगों ने अपनी समस्याओं पर विचार करके निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए :

- प्राथमिक शालाओं के भवनों का निर्माण और जीर्णोद्धार किया जाए,
- गांवों में पक्की सड़कों का निर्माण कराया जाए,
- पानी संग्रह की डिग्गियों की सफाई कराई जाए,
- बिजली के खम्भे ठीक से लगाए जाएं तथा ढीली तार श्रृंखलाओं को कसा जाए,
- हायर सैकेण्ड्री स्कूलों में विज्ञान विषय का संभाग प्रारम्भ किया जाए,
- सरकारी विकास योजनाओं की विस्तृत जानकारियों को वार्ड सभाओं में प्रसारित किया जाए।

नागौर जिले के एक गांव श्री बालाजी की वार्ड सभाओं का लेखक ने अवलोकन किया। श्री बालाजी गांव में सेवानिवृत्त पंचायत प्रगति प्रसार अधिकारी के सहयोग से प्रत्येक वार्ड के प्रस्ताव संग्रहित किए गए। उनका सार संक्षेप में इस प्रकार है :

- ग्राम में गंदे पानी की निकासी के लिए नालियां बनाई जाएं,
- बिजली के ढीले तार को कसवाए जाएं जिससे जान–माल का नुकसान न हो,
- घर–घर में पानी संग्रह के टेंक बनवाने के लिए लोगों को सरकार से अनुदान दिलाया जाए,

(शेष पृष्ठ 22 पर)

आदिवासी क्षेत्र शहडोल में शिक्षा का प्रचार–प्रसार

अनिल चमड़िया

लेखक ने इस लेख में एक दिलचस्प और उत्साहवर्धक बात कही है कि आदिवासी इलाकों में शिक्षा के प्रति ललक बढ़ रही है। इन इलाकों के गांवों में लोग स्कूलों के लिए अपना घर का हिस्सा तक इस्तेमाल के लिए दे देते हैं ताकि वहां स्कूल खोला जाए और बच्चे पढ़ने आएं। इन स्कूलों में दाखिला लेने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ रही है। लेकिन लड़कियों की संख्या में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हो रही है क्योंकि 12–13 वर्ष की लड़कियों की शादी कर दी जाती है। इन स्कूलों में बच्चों को नौकरी के लिए नहीं पढ़ाया जाता बल्कि उन्हें शिक्षा इसलिए दी जाती है कि वे अपना काम अच्छी तरह से कर सकें।

देश में स्कूली शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कार्यक्रमों की यह सफलता ही कही जाएगी कि ग्रामीण हल्कों में, खासतौर से उन लोगों में, स्कूली शिक्षा प्राप्त करने की जबरदस्त भूख देखी जा रही है जो रोज कुआं खोदकर पानी पीने की स्थिति में जीवन–यापन कर रहे हैं। लेकिन अब तक के अनुभवों के आधार पर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि स्कूली शिक्षा से लैस करने की कोशिश और शिक्षित होने की ललक को एक अंजाम की स्थिति तक पहुंचाना आसान नहीं है। मध्यप्रदेश जैसे पिछड़े राज्य के कई आदिवासी गांवों में अस्थायी स्कूलों का मुआयना करने के दौरान इस संबंध में जो सवाल प्रबल रूप से सामने आए हैं, उन पर गौर किए जाने की जरूरत है। सबसे पहले इस संबंध में ग्रामीण जनों की पहलकदमी का एक खाका पेश करना जरूरी है।

देश में स्कूली शिक्षा के प्रचार–प्रसार में एक बड़ी बाधा अर्थाभाव की है। सरकार कहती है कि उसके पास शिक्षा के ढांचागत विकास के लिए पर्याप्त पैसा नहीं है और गांव–गांव में नए–नए स्कूल खोलना संभव नहीं है। इसीलिए शायद सरकार ने अपनी कई तरह की योजनाओं के तहत शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय लोगों अथवा संगठनों को ग्रामीण इलाके में कम संसाधनों के बीच शिक्षा के प्रचार–प्रसार की जिम्मेदारी सौंपी है। यानी ग्रामीण इलाके के लोगों के सामने दोहरी जिम्मेदारी है। एक तो शिक्षा की जो भूख जगी है, उसे शांत करना और दूसरे शिक्षा के लिए संसाधनों की व्यवस्था करने में ऐसे लोगों अथवा संगठनों की मदद करना। मध्य प्रदेश के शहडोल जिले के कई आदिवासी बाहुल्य गांवों में यह पाया कि गांव के जिन लोगों के पास रहने के लिए पर्याप्त जगह है उन्होंने गांव के बच्चों को शिक्षा मुहैया कराने के उद्देश्य से अपना घर अस्थायी स्कूलों के लिए मुहैया कराया है। इनमें परसवार गांव के खोली टोला के स्वर्गीय बाबू लाल गौड़ का भी उदाहरण है जिन्होंने अपने जीवन–काल में अपना कच्चा घर अस्सी रुपये के मामूली

किराये पर स्कूल के लिए दे दिया था। इसका निर्वाहन अब उनकी विधवा कर रही है। बाबू लाल गौड़ा का मकान मिलने की वजह से आज उस टोले के 57 बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। पहले टोले के पास स्थित स्कूल रेलवे लाईन के उस पार होने की वजह से टोले के

ग्रामीण इलाके के शिक्षकों में यह देखा गया कि वे नौकरी के बजाय बच्चों के सर्वांगीण विकास पर ज्यादा जोर देते हैं। धनपुरी ओपन कास्ट कोलयरी के पास स्थित संगवा टोला के शिक्षकों का कहना है कि नौकरी के लिए नहीं बल्कि बच्चे अपना काम सही तरीके से कर सकें, इस पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है।

बच्चे वहां पढ़ने नहीं जा पाते थे। हालांकि अभी भी टोले के करीब बीस और बच्चे स्कूल में दाखिला लेना चाहते हैं लेकिन जगह की कमी की वजह से उन्हें स्कूल में नामांकन नहीं मिल पा रहा है। खोली टोला की तरह शहडोल जिले के अनूपपुर नगर के आस–पास के कई ऐसे आदिवासी बाहुल्य गांव हैं जहां पर इसी तरह के मकानों में अस्थायी स्कूल चल रहे हैं। इस कड़ी में पोंडी पंचायत के बड़का टोला में गोविंद सिंह के मकान और संगवा टोला स्थित स्कूलों के उदाहरण को भी देखा जा सकता है। लेकिन सवाल महज ढांचागत विकास का नहीं है बल्कि स्कूली शिक्षा के सामने और भी कई तरह की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चुनौतियां आड़े आती हैं, जिन पर गौर किए जाने की जरूरत है।

स्थानीय भाषा बनाम हिन्दी

खोली टोला के शिक्षक अमरदीन का कहना है कि यदि बच्चों को स्थानीय भाषा में शिक्षा दी जाए तो वे सौ प्रतिशत से ज्यादा गति से विकास कर सकते हैं। उन्होंने इस तरह के स्कूलों में किए गए अनुभवों के आधार पर यह दावा किया। अमरदीन के साथ एक खास बात यह जुड़ी हुई है कि उन्होंने ग्रामीण परिवेश में रहकर शहर से उच्च शिक्षा की डिग्रियां हासिल की हैं। इसके विपरीत सीतापुर स्थित राजकीय विद्यालय की शिक्षिका चन्द्रकला पाटनी स्कूल में कई तरह के प्रयोग करने के लिए प्रसिद्ध हैं। वे यहां अनूपपुर से पढ़ाने आती हैं और उनकी शिक्षा भी शहरी वातावरण में ही हुई है। उन्होंने बताया कि उन्हें शुरुआती दिनों में बच्चों को पढ़ाने में काफी कठिनाई होती थी। मसलन यहां की ग्रामीण बोली में भैंस को भईसा और मोर को मजूर कहा जाता है। वे भैंस और मोर कहने पर समझ नहीं पाते। लिहाजा उन्होंने पहले स्थानीय भाषा में चीजों की पहचान की और फिर बच्चों को स्थानीय भाषा के साथ मानक भाषा के समांतर शब्दों को दोहराया। शहर से डिग्री लेने वाली चन्द्रकला को तो यह परेशानी उठानी पड़ी लेकिन खोली टोला की शिक्षिका नागेश्वरी को इस तरह की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। वे मात्र आठवीं कक्षा पास हैं और बड़े मजे से बच्चों को पढ़ा लेती हैं। साथ ही मानक भाषा का भी ज्ञान कराने में सफल हो जाती हैं। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए इलाके में शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय कार्यकर्ता और मशहूर कवि श्याम बहादुर नम्र ने कई तरह की किताबें भी तैयार की हैं। उन्होंने इन किताबों को तैयार करने में स्थानीय शिक्षकों का काफी सहयोग लिया है।

नौकरी के बोझ से अलग

इधर के ग्रामीण इलाकों में स्कूली शिक्षा से अलग बच्चों को शिक्षित करने पर ज्यादा जोर देते देखा गया। यह सामान्य–सा तर्क है कि पढ़ लिखकर क्या होगा जबकि देश में पहले से ही पढ़े–लिखे बेरोजगारों की संख्या में लगातार इज़ाफा हो रहा है। ग्रामीण इलाके के शिक्षकों में यह देखा गया कि वे नौकरी के बजाय बच्चों के सर्वांगीण विकास पर ज्यादा जोर देते हैं। धनपुरी ओपन कास्ट कोलयरी के पास स्थित संगवा टोला के शिक्षकों का कहना है कि नौकरी के लिए नहीं बल्कि बच्चे अपना काम सही तरीके से कर सकें, इस पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। उन्होंने उदाहरण स्वरूप बताया कि इस स्कूल के बच्चों को खेती करना भी सिखाया जाता है। प्रयोग के तौर पर यहां के बच्चों को पौधे लगाना सिखाया गया और उन्होंने अच्छे तरीके से गाजर और टमाटर के पौधे लगाए। इस तरह उनमें अपने काम के प्रति विश्वास पैदा होता है। उन्हें तत्काल अपने काम का अच्छा फल मिलता दिखाई पड़ता है। इस इलाके के इस तरह लगभग स्कूलों में यह देखा गया कि बच्चों को प्राकृतिक चीजों की सहायता से पढ़ना–

यहां आदिवासी परिवारों में यह माना जाता है कि आठ–दस वर्ष की उम्र के बाद लड़कियों की शादी में काफी परेशानी हो जाती है। लड़के ही नहीं मिलते हैं। इसीलिए आठ या दस वर्ष उम्र की होते ही लड़कियों की पढ़ाई छुड़ा दी जाती है और उनका विवाह कर दिया जाता है।

लिखना सिखाया जाता है। पत्तियों और मिट्टी से भी कई तरह की शिक्षा दी जा सकती है। यानी शुरुआती दौर से ही शिक्षकों ने बच्चों की पढ़ाई को नौकरी की मानसिकता के बोझ से बिल्कुल अलग रखा है।

आर्थिक समस्या

ग्रामीण इलाकों के बच्चों और उनके परिवार में शिक्षा के प्रति तो ललक है लेकिन उन्हें कई तरह की विवशताओं के कारण अपनी इस भूख को भी मारना पड़ता है। परिवार के लोग कई बार बच्चों को खेत अगोरने, लकड़ी या कोयला बीनने के लिए भेज देते हैं। बच्चियों को घरों में भी काम करना पड़ता है। संगवा टोला में जब हम बच्चों की बनाई चित्रकारी का आनंद ले रहे थे, उस दौरान एक चित्र पर विशेष ध्यान गया। उस पर बनाने वाले का नाम परसोतम लिखा था। हमें समझते देर नहीं लगी कि वास्तव में यह नाम पुरुषोतम होगा। लेकिन उसने उसका ग्रामीणकरण कर दिया था। पतंग उड़ाते बच्चे के इस चित्र के रचनाकार से जब हमने मिलने की इच्छा जाहिर की तो पता चला कि वह कहीं मिट्टी

खोदने गया है। उसके घर में आर्थिक परेशानियां कुछ ज्यादा बढ़ गई थीं। इसीलिए उसके परिवार वालों ने उसे मिट्टी खोदकर कुछ कमा लाने के लिए भेजा था। परसोतम इस तरह का इकलौता लड़का नहीं है। लगभग स्कूलों में ऐसे बच्चों के बारे में हमें सुनने को मिला। इन स्कूलों में जो बच्चे हमें गैर हाजिर मिले, उनमें ऐसे बच्चों की तादाद ही ज्यादा थी। भोलगढ़ स्थित सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक ने भी बताया कि जब स्कूल में बच्चों के लिए दोपहर के भोजन का कार्यक्रम

कन्या विद्यालय का नहीं होना ग्रामीण इलाकों की एक समस्या है लेकिन सबसे बड़ी समस्या ग्रामीणों मं प्रचलित बाल–विवाह की प्रथा है। और यह कमोबेश लगभग सभी जातियों में देखी जाती है।

चलता रहता है तब यहां पढ़ने के लिए आने वाले बच्चों की तादाद में काफी बढ़ोतरी हो जाती है। भूख से निश्चिंत बच्चे मन लगाकर अध्ययन करते हैं।

सामाजिक कुरीतियां

मध्यप्रदेश के कई इलाकों खासतौर से आदिवासी बाहुल्य गांवों में कई तरह की रूढ़ियां सौर सामाजिक कुरीतियां भी शिक्षा के प्रचार–प्रसार में आड़े आती हैं। आदिवासी बाहुल्य गांवों में लड़कियां एक उम्र के बाद पढ़ने से वंचित कर दी जाती हैं। यहां आदिवासी परिवारों में यह माना जाता है कि आठ–दस वर्ष की उम्र के बाद लड़कियों की शादी में काफी परेशनी हो जाती है। लड़के ही नहीं मिलते हैं। इसीलिए आठ या दस उम्र की होते ही लड़कियों की पढ़ाई छुड़ा दी जाती है और उनका विवाह कर दिया जाता है। स्कूलों में ही हमें कई नाबालिग लड़कियों के विधवा होने की भी जानकारी मिली। शिक्षिका नागेश्वरी खुद कहती है कि उसकी शादी मात्र तेरह साल की उम्र में ही कर दी गई थी। नागेश्वरी शादी के बाद घर से तब निकली जब उसके परिवार के सदस्यों को शहर में नौकरी मिल गई। शहरी आबो हवा से प्रेरित होकर ही उसके परिवार के सदस्यों ने उसे स्कूल में पढ़ने के लिए भेजने पर अपनी सहमति जाहिर की। लड़कियों की स्थिति की कल्पना सीतापुर स्कूल को ध्यान में रखकर की जा सकती है। वहां के प्रधानाध्यापक अवधेश प्रताप सिंह ने बताया कि इस स्कूल में पांचवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए लड़कियों को अनूपपुर नहीं भेजा जाता है। वे यहां 1972 से इस स्कूल में हैं। तब से ये पहला मौका आया जब कुंवारी पियारिया कोल ने अनूपपुर में आगे की पढ़ाई के लिए कन्या विद्यालय में नामांकन कराया है। कुंवारी के नामांकन होने की पृष्ठभूमि में हमें पता चला कि उसका एक बड़ा भाई इस समय कोयलवरी में काम करने लगा है। कन्या विद्यालय का नहीं होना ग्रामीण इलाकों की एक समस्या है लेकिन सबसे बड़ी समस्या ग्रामीण में प्रचलित बाल–विवाह की प्रथा है। और यह कमोबेश लगभग सभी जातियों में देखी जाती है।

इसी तरह एक बुरी आदत से भी ग्रामीण हल्कों मे शिक्षा प्रभावित होती है। यहां के बच्चों में प्रायः तम्बाकू खाने की आदत बनी हुई है। यह आदत उन्होंने अपने घर में अपने मां–बाप से सीखी है। प्रायः आदिवासी परिवारों में तम्बाकू खाने और संपन्न परिवारों में महिला और पुरुष सदस्यों द्वारा शराब पीने का एक चलन बना हुआ है। हालांकि स्कूल में शिक्षकों के प्रयास से इन बच्चों में तम्बाकू खाने की आदत कम हुई है लेकिन इसके लिए शिक्षकों को काफी मेहनत करनी पड़ती है। हालांकि तम्बाकू खाने वाले बच्चों में उनकी इस आदत से शिक्षा के प्रति ललक कम नहीं होती है लेकिन शिक्षकों को उनके स्वास्थ्य के प्रति चिंता होने लगती है। इसका दूरगामी असर शिक्षा पर ही पड़ता दिखाई देता है। इस तरह के गांवों में स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की भूमिका भी एक तरह से इन शिक्षकों को ही अदा करनी पड़ती है।

बहरहाल ग्रामीण इलाकों में स्कूली शिक्षा का प्रचार–प्रसार हो रहा है। और दूर–दराज से नंगे पांव चलकर, फटे–पुराने कपड़े पहनकर, किसी पुरानी शीशी में स्याही भरकर लाने वाले बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और इस तरह के इलाकों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस मनाने का भी ज्ञान बच्चों में बढ़ रहा है। प्रसंगवश बता दें कि संगवा टोला में इस तरह के स्कूल खुलने के बाद ही यहां के बच्चों और ग्रामीणों ने पहली बार गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस के बारे में जाना। लेकिन एक खटकने वाली बात यह भी है कि

स्कूल महज अक्षर ज्ञान के लिए नहीं होते। एक ऐसी समझदारी विकसित करने के केन्द्र होते हैं जो एक स्वस्थ सामाजिक वातावरण में प्रमुख भूमिका अदा करें।

यहां सामाजिक दूरियां अपने पुराने अंदाज में बरकरार हैं। इन स्कूलों में आदिवासी, दलित और बहुत ही थोड़ी संख्या में पिछड़ी जाति के ही बच्चे पढ़ने जाते हैं जबकि स्कूल को एक ऐसा माध्यम होना चाहिए जहां से यह दूरी पटती हुई दिखाई पड़े। लेकिन कई बार लगता है कि विभिन्न समुदायों, जातियों और वर्गों के लिए अलग–अलग स्कूल चल रहे हैं। स्कूल महज अक्षर ज्ञान के लिए नहीं होते। एक ऐसी समझदारी विकसित करने के केन्द्र होते हैं जो एक स्वस्थ सामाजिक वातावरण तैयार करने में प्रमुख भूमिका अदा करें। शिक्षण कार्य में सक्रिय लोगों को इस दिशा में गहन विचार करना चाहिए। उन्हें उन लड़कियों की आगे की पढ़ाई भी जारी रखने का कोई तरीका निकालना चाहिए जो रूढ़िवादिता के कारण इससे वंचित हो रही हैं। इस दिशा में सबसे पहले इनके परिवारजनों को रूढ़ मानसिकता से बाहर निकालना होगा। संस्कृति–कर्मी इस काम में मददगार हो सकते हैं। प्रयोग के तौर पर आठ–दस वर्ष उम्र की लड़कियों के लिए अलग से अस्थायी स्कूल की शुरुआत की जा सकती है। इसके अलावा यहां जो रास्ता निकाला जाए, लेकिन एक बात बहुत स्पष्ट है कि इस काम को ग्रामीण परिवेश के शिक्षक, खासतौर से नागेश्वरी जैसी ग्रामीण महिला शिक्षक ही कारगर अंजाम दे सकती है। ❑

अपनी प्रत्येक हवाई यात्रा के दौरान
चाहे आप किसी भी एयरलाईन में यात्रा करें
आप हमेशा उड़ते हैं ए.ए.आई. के साथ

सुरक्षा सहित सेवा

एयरपोर्ट्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया

हम 5 अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डों, 90 घरेलू हवाई अड्डों और सैन्य विमान-क्षेत्रों में स्थित 27 असैनिक विमान टर्मिनलों की देखभाल के अलावा सम्पूर्ण भारतीय हवाई क्षेत्र और इससे बाहर के क्षेत्र का भी प्रबन्धन करते हैं।

"आपकी सुरक्षा हमारा दायित्व"

राजस्थान में नया शिक्षा आन्दोलन

शिक्षा–दर्पण–2000

राधेश्याम तिवारी

भारत में अभी भी करीब 45 करोड़ लोग निरक्षर हैं। इसमें राजस्थान जैसे राज्यों की स्थिति तो और दयनीय है। इस लेख में बताया गया है कि राज्य में निरक्षरों और बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की सही संख्या का पता ही नहीं है जबकि राज्य सरकार अगले पांच वर्षों में राज्य में शत प्रतिशत साक्षरता लाने के प्रति दृढ़ संकल्प है। सरकार ने शिक्षा–दर्पण 2000 परियोजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों का एक सरल और यथार्थ परिवार–वार सर्वेक्षण करने का निश्चय किया है। इस परियोजना के क्या उद्देश्य हैं और इससे राज्य में क्या बदलाव आने की संभावना है, पढ़िए यह जानकारी प्रस्तुत लेख में।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सूचना के अनुसार नई शताब्दी में विश्व में अशिक्षित नागरिकों की संख्या 90 करोड़ हो जाएगी जिसमें आधी संख्या भारत में होगी। इसका मतलब यह है कि एक अरब की जनसंख्या वाले देश में साक्षरता के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। खासकर राजस्थान जैसे प्रदेश में पिछले 50 वर्षों में प्रगति तो हुई है लेकिन इसे उपलब्धि के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। 1951 में पुरुषों के बीच साक्षरता दर 13.09 और महिलाओं के बीच 2.51 प्रतिशत थी। वह बढ़कर 1991 में क्रमशः 54.99 और 20.44 प्रतिशत तक आ गई। हालांकि राज्य में अब तक इस क्षेत्र में औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा की अनेक प्रणालियां विकसित हुई हैं फिर भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त होने में अभी देर है। दूसरी तरफ राज्य सरकार, आगामी तीन–चार वर्षों में, शत प्रतिशत साक्षरता हेतु पुरजोर प्रयास करने के लिए दृढ़ संकल्प है। पूर्व अनुभवों के आधार पर ऐसी योजना तैयार की जा रही है जिससे प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकीकरण में 5 वर्ष से अधिक समय न लगे। इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण विरोधाभास यह रहा है कि अब तक प्रदेश में निरक्षरों की सही संख्या का अंदाजा नहीं लगाया जा सका है जिसकी वजह से यह कहना कठिन है कि पूरे राज्य में निरक्षरता की वास्तविकता क्या है। वैसे तो प्रारंभ से ही अलग–अलग विभागों द्वारा विभिन्न शैक्षिक सूचनाओं को एकत्रित करने की कोशिश की गई है किन्तु उनके आंकड़े एक दूसरे से भिन्न रहे हैं, जिन्हें लेकर निश्चित रूप से सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता।

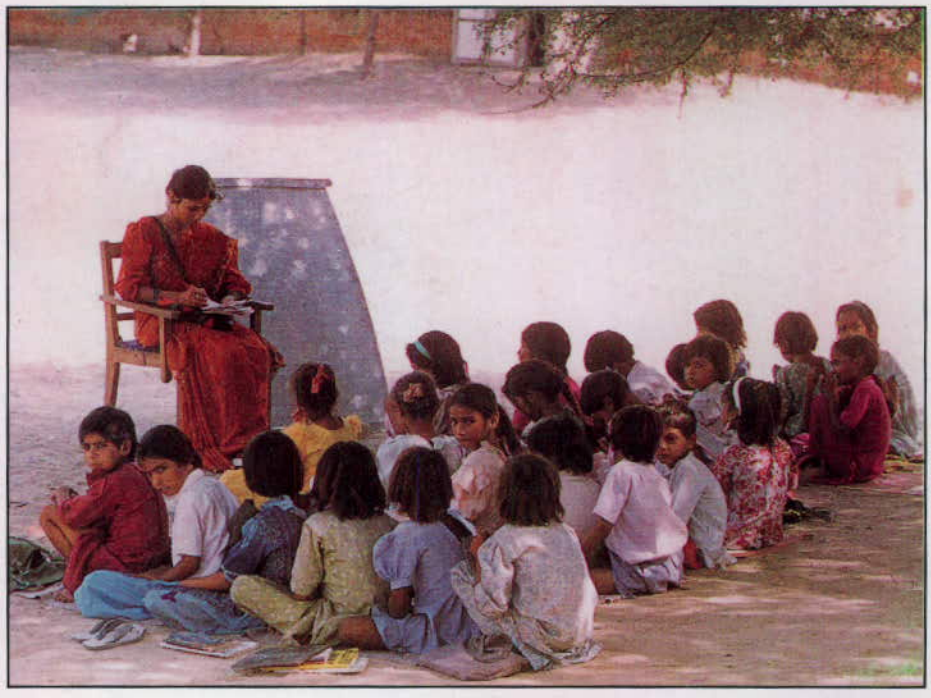

इसी वजह से आज तक प्रदेश में इस तथ्य का पता नहीं चल सका कि पाठशालाओं में दाखिला लेने के बाद पलायन कर चुके छात्रों की संख्या कितनी है। कई सर्वेक्षणों के माध्यम से यह भी पता चला है कि कुछ पाठशालाओं में फर्जी नामांकन भी किए गए हैं ताकि इन के अस्तित्व का सवाल न उठाया जाए और शालाएं चलती रहें।

इन्हीं समस्याओं पर गंभीरता से विचार करके राजस्थान सरकार ने लोक जुम्बिश,

इससे राजस्थान के सभी 32 जिलों के 45 हजार गांवों के प्रत्येक परिवार को लाभान्वित होने की आशा है। इस परियोजना के माध्यम से परिवार के सदस्यों से आग्रह किया गया है कि हर बच्चे को आठ वर्ष तक निश्चित रूप से पाठशाला की पढ़ाई पूरी करने दें।

शिक्षा कर्मी डीपीइपी, के साथ मिलकर *शिक्षा–दर्पण 2000* परियोजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों का एक सरल और यथार्थ, परिवार–वार शैक्षिक सर्वेक्षण करा कर साक्षरता को विश्वसनीयता के साथ जोड़ने का मन बना लिया है। जनवरी 2000 की जनसंख्या को आधार मानते हुए सरकार ने कई महत्वपूर्ण उद्देश्य तय किए हैं जिनमें प्रमुख हैं:

- अब तक जितना कार्य हो चुका है और कितना शेष है उसका सही आकलन,
- सर्वेक्षण के माध्यम से शिक्षा के सार्वजनिकीकरण के ध्येय की रूपरेखा तैयार करना,
- अलग–अलग स्तरों पर सूचनाओं की उपलब्धता से प्रत्येक बच्चे को शिक्षा से जोड़ने हेतु स्थानीय आधार पर नियोजन किया जाना,
- उपलब्ध आंकड़ों के सही विश्लेषण की प्रणाली विकसित करना,
- फर्जी नामांकन को रोकना,
- विश्वसनीय सूचनाओं के माध्यम से मानवीय, भौतिक और वित्तीय स्रोतों का योजनाबद्ध तरीके से उपयोग करना।

इस सर्वेक्षण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे मात्र 15 दिनों के भीतर ही पूरे प्रदेश में एक साथ पूरा किया जाना है, जिस में पंचायत, विकास खंड, जिला स्तर के सभी प्रमुख प्रशासनिक और राजनीतिक क्षेत्र के महत्वपूर्ण दलों के नेताओं का सहयोग अपेक्षित है। साक्षरता के प्रचार एवं प्रसार के लिए इतनी गंभीरता से कोशिश पहली बार की गई है।

इससे राजस्थान के सभी 32 जिलों के 45 हजार गांवों के प्रत्येक परिवार को लाभान्वित होने की आशा है। इस परियोजना के माध्यम से परिवार के सदस्यों से आग्रह किया गया है कि हर बच्चे को आठ वर्ष तक निश्चित रूप से पाठशाला की पढ़ाई पूरी करने दें। इस संदर्भ में आने वाली कठिनाइयों में सर्वप्रथम परिवार के सदस्यों के बीच विश्वास का वातावरण निर्माण करना होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों का उपयोग कृषि कार्यों में सहायक के रूप में किया जाता है क्योंकि बढ़ती बेरोजगारी के कारण जो संदेश ग्रामीण क्षेत्रों में जा रहा है उसके परिणाम अच्छे दिखलाई नहीं देते। एक तरह से उनकी मानसिकता ऐसी बनती जा रही है कि जिस से साक्षरता के विकास में अवरोध उत्पन्न होने लगा है। शिक्षा को नौकरी से जोड़ कर देखने के कारण उन्हें लगता है कि जब शहर में पढ़े–लिखे नौजवानों के आजीविका के लाले पड़ रहे हैं तो साक्षर ग्रामीणों को ऐसी शिक्षा से कोई लाभ होने को नहीं है। दूसरा यह कि गांवों में अधकचरी शिक्षा से सब से बड़ा नुकसान यह होता है कि व्यक्ति न तो पूरी तरह से कृषि कार्यों के प्रति समर्पित हो पाता है और न उसे शहरी संस्कृति ही रास आ पाती है। इसलिए जब तक मनौवैज्ञानिक रूप से उन्हें शिक्षित नहीं बनाए जाते और शिक्षित होने का गुण नहीं बताया जाता, तब तक इस की सफलता में संदेह होना स्वाभाविक है।

जिस देश में शिक्षा का प्रचार–प्रसार पाश्चात्य और अमरीकी देशों की तुलना में लगभग ढाई हजार वर्ष पहले हो चुका हो, उस देश में शिक्षा का सार्वजनिकीकरण न हो पाना गंभीर चिन्ता का विषय है। राज्य के मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलौत ने कहा है कि "सर्वेक्षण के डाटा को कम्प्यूटर द्वारा संकलित

बीस हजार लोगों की 10 हजार टीमें यदि 45 हजार गांवों के तमाम बच्चों की सूची तैयार कर उन्हें पाठशालाओं की ओर आकर्षित करने में सफल हो जाती हैं तो निश्चित रूप से शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व पहल मानी जाएगी।

और विश्लेषित किया जाएगा। इस से मार्च–2000 तक की राजस्थान की प्राथमिक शिक्षा की संदर्भित स्थिति एवं स्तर की वस्तुनिष्ठ और वास्तविक जानकारी प्राप्त होगी। इसी के आधार पर राजस्थान की भावी शिक्षा योजना की रूपरेखा तैयार कर शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य की प्राप्ति के सघन प्रयास किए जाएंगे।"

बीस हजार लोगों की 10 हजार टीमें यदि 45 हजार गांवों के तमाम बच्चों की सूची तैयार कर उन्हें पाठशालाओं की ओर आकर्षित करने में सफल हो जाती हैं तो निश्चित रूप से शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति मानी जाएगी। हालांकि साक्षरता अपने आप में एक सापेक्षिक शब्द है। 1977 में एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान ने साक्षरता की गहन जांच–पड़ताल करते हुए यह रिपोर्ट दी थी कि सब से ज्यादा साक्षर देश स्विटजरलैंड में भी हर पांचवें व्यक्ति में से एक, सिर्फ दवा की बोतलों पर लिखा निर्देश ही पढ़ सकता था। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी असमानता तो हमेशा से रहती आई है जबकि धनी देशों की सरकारें प्रति वर्ष इस मद में अपने बजट का 13 प्रतिशत खर्च करती हैं। फिर भी राजस्थान सरकार के शिक्षा–दर्पण 2000 अभियान की सफलता शिक्षा के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व पहल मानी जाएगी। ❑

बहुत आशाएं है पवन ऊर्जा से

धनंजय चोपड़ा

आज जब कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस जैसे ऊर्जा के पारंपरिक स्रोतों में कमी के आसार दिखाई देने लगे हैं, स्वाभाविक है कि हम सब का ध्यान ऊर्जा के गैर पारंपरिक स्रोतों की ओर जाए। इनमें पवन ऊर्जा मुख्य है। हमारे देश में इसकी अपार संभावनाएं हैं। लेखक ने यह जानकारी देते हुए बताया है कि भारत में अभी तक विश्व की कुल पवन ऊर्जा उत्पादन का 0.11 प्रतिशत उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और यदि हम प्रयास करें तो इसे 10 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा हमें इस दिशा में स्वदेशी तकनीक का सहारा लेने की कोशिश करनी चाहिए।

वैज्ञानिकों की इस चेतावनी के बाद कि सन 2010 तक ऊर्जा के जीवाश्म स्रोतों मसलन कोयला, प्राकृतिक गैस तथा तेल इत्यादि के भण्डार में इतनी कमी आ जाएगी कि वे उस समय की ऊर्जा मांग को पूरा नहीं कर पाएंगे। ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक प्राकृतिक स्रोतों को विकसित करने पर ध्यान दिया जा रहा है ऐसे में हवा की शक्ति को महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि आने वाले समय में पवन ऊर्जा अत्यन्त सार्थक सिद्ध होगी।

वास्तव में हवा एक सर्वव्यापी स्रोत है और मैदानी तथा पहाड़ी, दोनों ही क्षेत्रों में इसकी शक्ति का उपयोग हो सकता है। हवा के तेज वेग से पवन चक्की के हल्के पंखों को चलाकर गतिज ऊर्जा में बदला जाता है और फिर इस ऊर्जा को जेनरेटर के माध्यम से विद्युत ऊर्जा में बदल दिया जाता है। रोचक तथ्य यह है कि हवा से उत्पन्न शक्ति उसकी गति से तीन गुना अधिक होती है। पवन ऊर्जा से बिजली उत्पन्न करने के लिए गुजरात के कच्छ, ओखा, भावनगर, राजकोट, तमिलनाडु के तूतीकोंरिन, उड़ीसा में पुरी और महाराष्ट्र में देवगढ़–दहानू में पवन ऊर्जा फार्मों की स्थापना की गई है। आज पवन चक्कियों का उपयोग जल आहरण और वितरण में भी किया जा रहा है। पंखों की गति की ऊर्जा से भूमिगत जल को ऊपर लाया जाता है और सिंचाई तथा अन्य कार्य संपादित किए जाते हैं। उत्तर प्रदेश के गांव अछैया में 853 एकड़ भूमि की सिंचाई पवन चक्कियों से होती हुई देखी जा सकती है।

पवन ऊर्जा का उपयोग पुरातन काल से ही हो रहा है। चीन में सबसे पहले 13वीं शताब्दी में ही इस ऊर्जा को उपयोग में लाना प्रारम्भ कर दिया गया था। आज विश्व में पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता लगभग 40,000 मेगावाट है, जिसका सबसे बड़ा भाग संयुक्त राज्य अमरीका में उत्पादित होता है। दूसरे स्थान पर डेनमार्क है। भारत में पवन

ऊर्जा के उत्पादन की संभावनाएं असीम हैं। एक अनुमान के अनुसार अकेले भारत में 20,000 से 45,000 मेगावाट पवन ऊर्जा उत्पादन की क्षमता निहित है लेकिन अभी इस क्षमता का पूरी तरह उपयोग नहीं हो पा रहा है। अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय ने दस प्रदेशों में बिखरे 80 ऐसे क्षेत्रों का पता लगाया है, जहां पवन ऊर्जा की अपार क्षमता है। अभी देश में स्थापित पवन ऊर्जा की क्षमता 1080 मेगावाट है जो सन 2005 तक लगभग 2000 मेगावाट तक हो जाएगी, ऐसी आशा व्यक्त की जा रही है।

पवन ऊर्जा के क्षेत्र में सघन अनुसंधान हेतु स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार प्रयासरत है लेकिन प्रथम संगठित अनुसंधान 1952 में आरम्भ हुआ। विकास और अनुसंधान के कई चरणों के बाद भी हम इस क्षेत्र में पूरी तरह स्वदेशी नहीं हो पाए हैं। हमें अभी तक 80 प्रतिशत सफलता ही प्राप्त हो सकी है। पवन चक्कियों के लिए ब्लेड और विशिष्ट प्रकार की बियरिंग बनाने के क्षेत्र में पूरी तरह स्वदेशी होने पर ही हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। यहां यह कहना जरूरी है कि रोटर ब्लेड के उत्पादन में देशी तकनीक से तैयार करने में महती सफलता मिली है। भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल) ने इसका पहला नमूना कायाघर में लगाया था, जिसने संतोषजनक परिणाम दिए हैं।

आज देश में पवन ऊर्जा टरबाइन और अन्य आवश्यक सामान बनाने से जुड़ा उद्योग 1,500 करोड़ रुपये से अधिक का वार्षिक व्यापार कर रहा है। इस क्षेत्र में 15 औद्योगिक संस्थान लगे हुए हैं। इनमें से तीन संस्थान अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुसार पवन ऊर्जा टरबाइन ब्लेड बना रहे हैं, जिनकी अत्यन्त आवश्यकता है। भारत में 14 राज्य ऐसे हैं जिन्होंने अपने यहां पवन ऊर्जा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास के लिए नीतियां निर्धारित की हैं और आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराने का निर्णय लिया है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि देश में पवन ऊर्जा की अपार शक्ति की उपलब्धता रेगिस्तानी क्षेत्रों में निहित है, जहां तेज हवाएं हमेशा चलती रहती हैं। सच तो यह है कि हवाओं के कारण उड़ती मिट्टी और रेत से रेगिस्तान की भूमि का संरक्षण असम्भव हो जाता है। यदि पवन ऊर्जा संयंत्रों का उपयोग बिजली उत्पादन के साथ–साथ भूमिगत जल ऊपर लाने में किया जाए तो निश्चित ही रेगिस्तानी क्षेत्रों का पर्यावरणीय परिदृश्य बदला जा सकता है। भारत सरकार ऐसे क्षेत्रों में पवन चक्की यंत्र लगाने के लिए किसानों को आर्थिक सहायता देती है। पवन ऊर्जा फार्म की स्थापना के लिए सरकार निजी क्षेत्र के संस्थानों का सहयोग भी ले रही है। मध्य प्रदेश में इस सम्बन्ध में पहले ही एक सार्थक पहल हो चुकी है।

विश्वव्यापी संस्था ग्रीन पीस और पवन ऊर्जा विशेषज्ञों ने अपने संयुक्त सर्वेक्षण पर आधारित रिपोर्ट में यह तथ्य उजागर किया है कि पृथ्वी पर हवा की शक्ति ऊर्जा का एकमात्र सार्थक विकल्प बन सकती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि बिना किसी विशेष तकनीकी की खोज में समय गंवाए पवन ऊर्जा की वर्तमान स्थापित क्षमता 0.11 प्रतिशत को सीधे 10 प्रतिशत किया जा सकता है और यदि ऐसा किया गया तो कार्बन जनित स्रोतों के क्षरण को 23.2 करोड़ टन प्रति वर्ष बचाया जा सकेगा। रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि राजनीतिक इच्छाशक्ति और जन–संचेतना से पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता को निरंतर बढ़ाकर हम पर्यावरण के निरन्तर हो रहे क्षरण को बचा सकते हैं। रिपोर्ट में अमरीका, डेनमार्क और भारत का विशेष उल्लेख करते हुए इन देशों में पवन ऊर्जा की असीम सम्भावनाओं की आशा व्यक्त की गई हैं।

अपने देश की निरंतर बढ़ती जनसंख्या और विकास की दर के बीच समन्वय की स्थिति स्थापित करने के लिए ऊर्जा के क्षेत्र में स्वावलम्बी बनना अत्यन्त आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब जीवाश्म ईंधनों के समाप्त होने से पहले ही ऊर्जा के वैकल्पिक गैर–परम्परागत स्रोतों को उपयोग में लाना प्रारम्भ कर दिया जाए। इस लक्ष्य को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि हम देश में व्याप्त पवन ऊर्जा की पूरी क्षमता का सदुपयोग करने में शीघ्र से शीघ्र सक्षम हो जाएं। ❑

पेड़

कुछ पेड़ मुझे
प्रेमी के वायदों से लगते हैं
कुछ पेड़ मुझे
आशिक की रातों से लगते हैं
कुछ पेड़ मुझे
मां की मीठी बातों से लगते हैं
कुछ पेड़ मुझे
बचपन की यादों से लगते हैं

जिंदगी के भाग–गुणा से
बेखबर, अनजान, अल्हड़, मस्त,
बेफिक्र बस हर समय झूमते–गाते
बांटते रहते हैं
जहर बुझी हवाओं में जीवन दान कि
कुछ पेड़ मुझे
रूह की धड़कनों से लगते हैं

कुछ पेड़ मुझे
नितांत अपनों से लगते हैं
कुछ पेड़ मुझे
अपने टूटे सपनों से लगते हैं
कुछ पेड़ मुझे
दूर देश ब्याही बहनों से लगते हैं
सच कहूं तो, पेड़ मुझे
प्रकृति का श्रेष्ठतम उपहार लगते हैं
अद्भुत, सुन्दर और प्यारे से!

हंसराज भारती

आज भी उपयोगी हैं
बोझा ढोने वाले पशु और बैलगाड़ियां

डा. राम सूरत त्रिपाठी

हमारे देश ने 50 वर्षों की विकास–यात्रा में उल्लेखनीय प्रगति दर्ज की है परंतु अभी भी हमारे अर्थ–तंत्र के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां आधुनिकता और परिवर्तन का असर कम दिखाई पड़ता है। कृषि क्षेत्र को ही लें तो हम पाते हैं कि हमारे बोझा ढोने वाले पशुओं की दशा आज भी लगभग उसी प्रकार की है जिस प्रकार 50 वर्ष पहले थी। अधिकांश किसानों के पास आज भी लगभग उसी प्रकार की बैलगाड़ी है जिस प्रकार की पहले थी। वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के साथ–साथ हमारी बहुत–सी पुरानी वस्तुएं और परम्पराएं कालातीत हो गई हैं तथा उनकी उपयोगिता खत्म हो गई है परंतु आवागमन के आधुनिक साधनों के विकास के बावजूद हमारे बोझा ढोने वाले पशुओं और बैलगाड़ियों की उपयोगिता आज भी बरकरार है। आज न तो इनका कोई विकल्प है और न भविष्य में किसी विकल्प के होने की सम्भावना है।

बोझा ढोने वाले पशुओं में बैल, भैंसा, खच्चर, ऊंट, घोड़े और गधे मुख्य हैं। ये पशु शहरों तथा गांवों में बोझा ढोने और कृषि कार्य करने के काम आते हैं। इन पशुओं की अनुमानित संख्या 40 करोड़ है जिनमें लगभग 24.7 करोड़ बैल, 6 करोड़ भैंसे, 4 करोड़ गधे, 2.7 करोड़ घोड़े, 1.6 करोड़ ऊंट तथा एक करोड़ खच्चर हैं। इन पशुओं की मांसपेशीय शक्ति पशु ऊर्जा कहलाती है। यह ऊर्जा पशु की नस्ल, शरीर के आकार, वजन आदि के अनुसार अलग–अलग होती है। अधिकांश पशु 0.4 से 0.7 अश्व शक्ति ऊर्जा वाले होते हैं। औसतन एक पशु से 0.5 अश्व शक्ति ऊर्जा प्राप्त होती है। अनुमान लगाया गया है कि प्रौढ़ पशुओं से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह पूरे देश के लगभग दो–तिहाई कृषि कार्यों के लिए पर्याप्त हो सकती है।

कृषि विकास के लिए ऊर्जा की उपलब्धता आवश्यक है। हमारे पास परम्परागत ऊर्जा के स्रोत सीमित हैं अतः गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन इन स्रोतों से हमारे छह करोड़ छोटे किसानों के लाभान्वित होने में अभी समय लगेगा इसलिए उनके लिए आगामी पांच दशकों तक बोझा ढोने वाले पशुओं की उपयोगिता बनी रहेगी। यद्यपि कृषि के क्षेत्र में मशीनीकरण और आधुनिकता का प्रवेश हो चुका है तथापि छोटे किसानों के लिए मशीनीकरण अधिक व्यावहारिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए ट्रैक्टर कृषि कार्यों के लिए बहुत उपयोगी है परन्तु इसका उपयोग तीन हेक्टेयर से बड़े खेतों के लिए ही अनुकूल है। छोटे किसानों के पास दो हेक्टेयर से कम कृषि भूमि होती है अतः वे ट्रैक्टर नहीं वहन कर सकते। उनके लिए कृषि कार्यों के निमित्त पशु ही उपयुक्त हैं।

किसानों के लिए कृषि के बाद पशु का ही विशेष महत्व है। वास्तव में कृषि और पशु एक–दूसरे के पूरक हैं। जब से गांव–गांव में ट्रैक्टर हो गए तब से देखने में आता है कि कुछ छोटे किसान बैल पालने के बजाय भाड़े पर ट्रैक्टर लेकर अपने कृषि कार्य पूरे कर लेते हैं। इससे बहुत हानि है। ध्यान रखना होगा कि किसान चाहे जितनी बड़ी जोत वाला हो, पशुओं के बिना उसका कृषि कार्य सुचारू ढंग से नहीं चल पाएगा। बहुत से छोटे–मोटे कृषि कार्यों के लिए ट्रैक्टर की अपेक्षा पशु अधिक उपयोगी होते हैं। इसके अतिरिक्त पशुओं से गोबर मिलता है जो ईंधन के लिए उपले बनाने के काम आता

है और बचे हुए गोबर को खेतों के लिए अच्छी किस्म की खाद बनाने के काम में लाया जा सकता है।

बोझा ढोने वाले पशु बहुउपयोगी होने के बावजूद निरीह अवस्था में हैं। वैज्ञानिकों ने इनके सुधार और कल्याण की तरफ उचित ध्यान नहीं दिया। इसी कारण उपलब्ध पशु ऊर्जा का सही इस्तेमाल नहीं हो पाता। विकसित तकनीक के अभाव में बहुत–सी पशु ऊर्जा बेकार चली जाती है। पशु संवर्द्धन की विकसित तकनीक और अच्छे प्रबंधन द्वारा बोझा ढोने वाले पशुओं में सुधार लाना बहुत आवश्यक है। अच्छी नस्ल के पशु उपलब्ध होने से कृषि कार्य कारगर ढंग से सम्पन्न होंगे, साथ–साथ कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि होगी। इसलिए आर्थिक विकास के एजेण्डे में बोझा ढोने वाले पशुओं का सुधार कार्यक्रम अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए। अभी केवल दुधारू पशुओं के संवर्द्धन के कार्यक्रम चल रहे हैं। इनकी परिधि में बोझा ढोने वाले पशुओं को भी लाया जाना चाहिए।

बैलगाड़ी की महत्ता किसी से छिपी नहीं है। गांवों की अर्थव्यवस्था में बैलगाड़ियों का योगदान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। चाहे कोई कृषि कार्य करना हो या किसी मेले में जाना हो या किसी बारात में सम्मिलित होना हो, बैलगाड़ी अवश्य चाहिए। देश में मोटर–गाड़ियों की संख्या चाहे जितनी अधिक बढ़ जाए, ट्रैक्टरों की संख्या चाहे जितनी अधिक बढ़ जाए, बैलगाड़ी के बिना सभी साधन अधूरे हैं। डीजल से चलने वाले स्वचालित वाहनों की भारी संख्या हमारी उन्नति की प्रतीक अवश्य हैं परन्तु ऊर्जा संकट के वर्तमान दौर में बैलगाड़ी की उपयोगिता कम नहीं है। मोटर– गाड़ियों और ट्रकों की उपयोगिता तभी सिद्ध होती है जब उन्हें बैलगाड़ी का सहयोग मिलता है। स्वचालित वाहन जहां नहीं जा सकते वहां बैलगाड़ियां जाती हैं। पहाड़ी–पठारी भागों में आज भी सड़कें पर्याप्त नहीं हैं। अभी पचास फीसदी गांव सड़क मार्ग से सीधे नहीं जुड़े हैं। ऐसे इलाकों में बैलगाड़ी ही काम आती है। अनुमान लगाया गया है कि दूर–दराज के क्षेत्रों में 16 कि.मी. तक एक टन बोझा ढोने में बैलगाड़ियां ही सस्ती और उपयोगी हैं। इनमें किसी प्रकार की परम्परागत ऊर्जा का प्रयोग भी नहीं किया जाता।

देश में बैलगाड़ियों की मौजूदा संख्या की सही–सही गणना उपलब्ध नहीं है। अनुमान है कि देश में लगभग डेढ़ करोड़ बैलगाड़ियां हैं जो प्रति वर्ष लगभग 17 करोड़ टन भार का माल ढोती हैं। इन बैलगाड़ियों में लगभग 32 अरब रुपयों की पूंजी विनियोजित है। बैलगाड़ियों द्वारा लगभग 1.75 करोड़ व्यक्ति अपनी रोजी–रोटी कमा रहे हैं जबकि माल ढोने वाली रेलगाड़ियों के द्वारा 14 लाख व्यक्तियों को और ट्रकों के द्वारा 60 लाख व्यक्तियों को रोजी–रोटी मिलती है। इससे स्पष्ट है कि हमारी अर्थव्यवस्था में भारवाहक अन्य साधनों की तुलना में बैलगाड़ियों का योगदान अधिक है।

सदियों से बैलगाड़ियों की बनावट वही चली आ रही है। इसमें सुधार की जरूरत है। पुराने नमूने की बैलगाड़ियों में कई दोष हैं। बैलगाड़ियों का जुआं लकड़ी का बना होता है जो चिकना नहीं होता इससे कभी–कभी पशुओं की गर्दन में घाव बन जाते हैं। फलस्वरूप शक्तिशाली पशु भी काम लायक नहीं रह जाता। एक अनुमान के अनुसार हर वर्ष लगभग 50 लाख पशु गर्दन के घाव के कारण बेकार हो जाते हैं। एक बड़ी मात्रा में पशु ऊर्जा बेकार हो जाती है। इससे एक तरफ कृषि कार्य में बाधा पहुंचती है, दूसरी तरफ तत्काल दूसरा पशु खरीदने में अप्रत्याशित रूप से धन खर्च हो जाता है। इसके अतिरिक्त पुरानी बैलगाड़ियों के पहियों में लगे हुए लोहे के रिम सड़कों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। अनुमान है कि हमारी सड़कों को पुरानी बैलगाड़ियों के चलने से लगभग 70 अरब रुपयों की हानि पहुंचती है।

बैलगाड़ियों के स्वरूप में नयापन लाने की दिशा में "इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेण्ट", बंगलौर ने बैलगाड़ी का एक नया नमूना तैयार किया है जिसकी भारवाहन क्षमता पांच टन है तथा वजन भी पुरानी बैलगाड़ियों की तुलना में कम है। एक एल्यूमिनियम कम्पनी ने भी एल्यूमिनियम की बैलगाड़ी तैयार की है जो काफी हल्की है और लागत भी अधिक नहीं है। वारंगल के एक इंजीनियरिंग कालेज और हैदराबाद की एक संस्था ने भी बैलगाड़ी का एक नया नमूना तैयार किया है। परन्तु इनका प्रचार–प्रसार नहीं हो पाया। नए नमूने की मात्र सात प्रतिशत बैलगाड़ियां ही प्रचलन में हैं।

जब हम नए नमूने की बैलगाड़ी हर किसान को उपलब्ध करा सकेंगे तभी हम आम आदमी तक वैज्ञानिक प्रगति पहुंचाने का दावा कर सकते हैं। अतः वैज्ञानिकों और सरकार का ध्यान बोझा ढोने वाले पशुओं और बैलगाड़ियों के सुधार के प्रति अपेक्षित है। यदि हमारे वैज्ञानिक इस दिशा में सफल प्रयास कर सकें तो यह भी देश में खुशहाली लाने की दिशा में एक सराहनीय कदम होगा। ❑

(पृष्ठ 12 का शेष) **राजस्थान के गांवों में...**

- गांव में जिन कुओं पर सरकार ने मशीन लगाने का संकल्प लिया है उसे पूरा करने की पुरजोर कोशिश की जाए।
- प्राथमिक शालाओं के जीर्ण शीर्ण भवनों की मरम्मत कराई जाए। कन्या प्राथमिक विद्यालयों को खुलवाया जाए। राजीव गांधी स्वर्ण जयन्ती पाठशालाओं के लिए शिक्षा सहयोगियों को नियुक्त कराने के लिए ग्रामीण युवक–युवतियां से आवेदन लिए जाएं।
- गांव के स्कूल और चिकित्सा विभाग के कर्मियों को गांव में ठहरने को विवश किया जाए। रात्रि में डाक्टरों को गांव में ठहराने के लिए कार्यवाही की जाए।

इस विवरण के आधार पर यह तो कहा जा सकता है कि प्रतिकूल मौसम के बावजूद ग्रामीण जनों ने लघु गणतंत्रीय प्रत्यक्ष लोकतंत्र की व्यवस्था की दिशा में सृजनात्मक प्रयास किया है। ग्रामीणों ने स्वयं की अनुभूत समस्याओं पर विचार–विमर्श किया। सामाजिक अंकेक्षण और जन सुनवाई प्रक्रिया का प्रयोग किया। सरकारी अधिकारियों का सहयोग भी ग्रामीण जनों को मिला। इस तरह प्रदेश की एक लाख चार हजार लघु संवैधानिक इकाइयों में ग्रामीण लोगों ने सफलतापूर्वक सभाएं आयोजित कर अपनी अनुभूत समस्याओं को उजागर करके सरकारी प्रबंधन को एक दिशा प्रदान की है। जनता और सरकार की यह पारस्परिता जन–क्रांति की सफल घोषणा करती है। जो व्यक्तिगत अहम को मिटा कर सार्वजनिक विकास के लिए सजग हो जाता है वो राष्ट्र निर्माण का प्रेरक आधार बन जाता है। राजस्थान प्रदेश की इन वार्ड सभाओं की उपलब्धियों को वास्तविक लघु गणतंत्रीय और प्रत्यक्ष लोकतंत्र की स्थापना के लिए राष्ट्र का सृजनात्मक प्रयोग कहा जाता है। ❑

प्रिय पाठक,

यहां एक प्रश्नावली दी जा रही है जिसके माध्यम से हम आपकी प्रिय पत्रिका *कुरुक्षेत्र* के बार मे आपकी राज्य जानना चाहते हैं कि पत्रिका आपकी आशाओं के अनुरुप निकल रही है अथवा नहीं। आशा है आप अपने अमूल्य समय में से कुछ क्षण निकाल कर इस प्रश्नावली को भरकर हमारे पास भेजने का कष्ट करेंगे ताकि हम जान सकें कि हमारे प्रयास कहां तक सार्थक हैं और हमें पत्रिका में क्या सुधार की जरूरत है। आपकी राय हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

– सम्पादक

पाठक का विवरण

1.ए निम्नलिखित में से कौन–सा तथ्य आपके बारे में सर्वाधिक सही है (किसी एक पर √ का निशान लगाएं)

1) प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी में जुटा विद्यार्थी ☐
2) प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहा रोजगार प्राप्त व्यक्ति ☐
3) ग्रामीण विकास के क्षेत्र में कार्यरत (स्वंयसेवी संगठन इत्यादि) ☐
4) सरकारी कर्मचारी ☐
5) शोधार्थी / शिक्षाविद / पत्रकार ☐
6) अन्य ☐

1.बी आयु वर्ग (कृपया एक पर √ का निशान लगाएं)

1) 20 वर्ष से कम ☐ 2) 20 – 24 वर्ष ☐ 3) 25 – 29 वर्ष ☐
4) 30 – 34 वर्ष ☐ 5) 35 – 39 वर्ष ☐ 6) 40 – 44 वर्ष ☐
7) 45 – 49 वर्ष ☐ 8) 50 – 54 वर्ष ☐ 9) 55 वर्ष और उससे अधिक ☐

1.सी लिंग

1) पुरुष ☐ 2) महिला ☐

1.डी उच्चतम शिक्षा (कृपया एक पर √ का निशान लगाएं)

1) दसवीं पास ☐ 2) बारहवीं पास ☐ 3) स्नातक ☐
4) स्नातकोत्तर ☐ 5) एम. फिल ☐ 6) पी.एच.डी. ☐
7) अन्य स्पष्ट बताएं .....

1.ई आप कितने समय से *कुरुक्षेत्र* के पाठक हैं? (एक पर √ का निशान लगाएं)

1) एक वर्ष से कम समय से ☐ 2) 1 – 2 वर्ष ☐ 3) 3 – 4 वर्ष ☐
4) 5 – 9 वर्ष ☐ 5) 10 वर्ष या उससे अधिक समय से ☐

1.एफ क्या आप *कुरुक्षेत्र* के वार्षिक ग्राहक हैं?

1) हां ☐ 2) नहीं ☐

1.जी. यदि आप वार्षिक ग्राहक हैं तब वर्ष में कितनी बार *कुरुक्षेत्र* खरीदते हैं? (कृपया किसी एक पर √ का निशान लगाएं)

1) हर महीने ☐ 2) दो–तीन महीने में एक बार ☐
3) अंक की सामग्री को देखकर ☐ 4) कोई भी लागू नहीं ☐

1.एच. आप *कुरुक्षेत्र* अंक को कितनी बार पढ़ते हैं? (कृपया एक पर √ का निशान लगाएं)

1) केवल एक बार ☐ 2) एक से अधिक बार ☐
3) एक बार तथा फिर केवल विशेष संदर्भ के लिए ☐

1.आई. *कुरुक्षेत्र* के हर अंक को पढ़ने में आप कितना समय लगाते हैं? (कृपया एक पर √ का निशान लगाएं)

1) एक घंटे से कम ☐ 2) 1 – 3 घंटे ☐ 3) 3 घंटे से अधिक ☐

विभिन्न विषय–क्षेत्रों में अभिरुचि

2. कृपया उस विषय–क्षेत्र पर √ का निशान लगाएं जिनमें आपको विशेष रुचि है (आप एक से अधिक विषयों पर निशान लगा सकते हैं)। *कुरुक्षेत्र* में प्रकाशित इन विषय–क्षेत्रों पर छपने वाले लेखों के बारे में भी अपने विचार व्यक्त करें।

क्रम सं.	विषय–क्षेत्र	रुचि		इन विषयों पर लेख छपते हैं		
		हां	नहीं	आशा से कम	पर्याप्त	आशा से अधिक
1.	ग्रामीण प्रशासनिक निकाय					
2.	ग्रामीण संस्थाएं					
3.	ग्रामीण विकास संबंधी योजना					
4.	ग्रामीण विकास में महिलाएं					
5.	ग्रामीण आवास					
6.	ग्रामीण स्वास्थ्य					
7.	ग्रामीण स्वच्छता					
8.	ग्रामीण जल आपूर्ति					
9.	आदिवासी विकास					
10.	ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा					
11.	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा					
12.	ग्रामीण क्षेत्रों में कानूनी जानकारी					
13.	ग्रामीण वित्त					
14.	ग्रामीण संचार					
15.	ग्रामीण विपणन					
16.	ग्रामीण उद्योगों का प्रबंधन					
17.	ग्रामीण सहकारिता					
18.	ग्रामोद्योग					
19.	ग्रामीण/देसी तकनीकें					
20.	ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम					
21.	ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम					
22.	आय–वृद्धि संबंधी गतिविधियां					
23.	साझा संपत्ति संसाधन प्रबंधन					
24.	प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन					
25.	वाटर शेड प्रबंधन					

पाठक की राय

3.ए *कुरुक्षेत्र* में प्रकाशित लेखों की संख्या के बारे में आपकी क्या राय है? (कृपया आप जिससे सहमत हैं उसे चुनें)

1) लेखों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए ☐

2) लेखों की संख्या कम होनी चाहिए ☐

3) लेखों की संख्या पर्याप्त है ☐

3.बी *कुरुक्षेत्र* में प्रकाशित लेखों के स्तर के बारे में आपकी राय क्या है? (कृपया जिससे आप सहमत हैं उस कथन को चुनें)

1) सभी लेख अच्छे होते हैं ☐

2) अधिकांश लेख अच्छे होते हैं ☐

3) केवल कुछ लेख ही अच्छे होते हैं ☐

4) कोई भी लेख अच्छा नहीं होता ☐

3.सी *कुरुक्षेत्र* में प्रकाशित आंकड़ों/तथ्यों के बारे में आपकी क्या राय है (कृपया जिससे आप सहमत हैं उस कथन को चुनें)

1) अपर्याप्त आंकड़े/जानकारी होती है ☐

2) पर्याप्त आंकड़े/जानकारी होती है ☐

3.डी *कुरुक्षेत्र* में प्रकाशित लेखों के विषय–क्षेत्रों के बारे में आपकी क्या राय है? (कृपया जिससे आप सहमत हैं उस कथन को चुनें)

1) और अधिक विषयों पर लेख छपने चाहिए ☐

2) विषय–सामग्री व्यापक है उसे कम किया जा सकता है ☐

3) कवरेज ठीक–ठाक है ☐

3.ई वर्तमान में *कुरुक्षेत्र* मासिक पत्रिका है। इसकी प्रकाशन अवधि के बारे में आपकी क्या राय है? (कृपया जिससे आप सहमत हैं उस कथन को चुनें)

1) पाक्षिक कर दिया जाना चाहिए ☐

2) मासिक प्रकाशन ही ठीक है ☐

3) मासिक प्रकाशन की आवश्यकता नहीं है। पत्रिका दो या तीन महीनों में एक बार प्रकाशित होनी चाहिए ☐

3.एफ *कुरुक्षेत्र* के मूल्य के बारे में आपकी क्या राय है? (जिससे आप सहमत हैं उसक कथन को चुनें)

1) इस तरह की पत्रिका के लिए मूल्य कम है ☐

2) मूल्य ठीक है ☐

3) मूल्य अधिक है ☐

नाम .....

पता .....

.....

.....पिन कोड .....

संगठन का नाम (यदि कार्यरत हैं) .....

पद (यदि कार्यरत हैं) .....

टेलीफोन नंबर (कार्यालय).....

हस्ताक्षर .....

अपना अमूल्य समय देने के लिए धन्यवाद

प्रश्नावली को निम्न पते पर भेजें :

सम्पादक,
कुरुक्षेत्र,
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन,
नई दिल्ली–110001

सामाजिक समानता के लिए जरूरी है बालिका शिक्षा

देवेन्द्रनाथ के. पटेल

आज पूरे भारतवर्ष में साक्षरता अभियान चल रहा है। लिटरेसी कैम्पेन इन इंडिया, 1997–98 की वार्षिक रिपोर्ट से पता चलता है कि साक्षरता अभियान में 12.63 करोड़ लोग निरक्षर थे जिसमें पांच करोड़ यानी 39 प्रतिशत पुरुष और सात करोड़ यानी 61 प्रतिशत महिलाएं थीं। अनुसूचित जनजाति के 1.7 करोड़ यानी 13 प्रतिशत और अनुसूचित जाति के 2.7 करोड़ यानी 23 प्रतिशत लोग निरक्षर थे। आज भी भारत में बालिका शिक्षा की समस्या गंभीर है।

बालिका शिक्षा के बारे में जितनी समानता सामाजिक स्तर पर होनी चाहिए थी उतनी हुई नहीं है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों ने साक्षरता के सम्बन्ध में प्रयास किए हैं फिर भी साक्षरता का लाभ महिलाओं/बालिकाओं को बालकों/पुरुषों की तुलना में कम मिला है।

बालिका शिक्षा कम होने के कारण :

- बालिका तथा महिलाओं की सामाजिक भूमिका निश्चित है, जिसमें शिक्षा के लिए कम अवकाश मिलता है।
- बालिका और महिलाएं दैनिक जीवन के कामों जैसे – लकड़ी, घासचारा, पानी

* परियोजना अधिकारी/प्राध्यापक निरंतर शिक्षा एवम् विस्तार कार्य विभाग, दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत – 395007 (गुजरात)

लाना और अन्य रोजगार में इतनी व्यस्त होती हैं कि अन्य कामों के लिए समय नहीं निकाल पातीं।

- सामाजिक मान्यताओं की वजह से शिक्षा, आरोग्य और रोजगारी की जरूरत के संदर्भ में महिला और बालिकाओं के लिए सबसे अंतिम चरण में विचार–विमर्श होता है।
- निर्णय प्रक्रिया से अलग होने के कारण सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी नहीं हो पाती है।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिला और पुरुषों के बीच समानता लाने के साधन के तौर पर शिक्षा की भूमिका की चर्चा से एक नई संभावना का उद्‌भव हुआ। इस नीति के लिए "महिला/बालिकाओं के समानता के लिए शिक्षा" का अलग प्रकरण रखा गया है। इन नीति के मुख्य मुद्दे इस तरह हैं :

- महिलाओं की स्थिति में मूलभूत बदलाव लाने के साधन के तौर पर शिक्षा का उपयोग किया जाएगा। सामाजिक विकृतियों का असर नेस्तानाबूद करने के लिए महिलाओं के लिए लाभदायी और सुगठित शिक्षा व्यवस्था का विकास किया जाएगा।
- महिलाओं में सामाजिक, आर्थिक सक्षमता बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था विधेयक मध्यस्थता की भूमिका निभाएगा।
- प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने और उसे चालू रखने में जो अवरोध हैं उन्हें दूर करने, महिलाओं में निरक्षरता निवारण की विशेष सेवाएं, समयबद्ध लक्ष्य हासिल करने और असरदार देख–रेख को उच्च प्राथमिकता प्रदान की जाएगी।
- गरीबी के कारण मजदूरी करने वाली बालिकाओं/महिलाओं के लिए सामान्य और व्यवसायी शिक्षा विकसित की जाएगी। विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर शिक्षा का विकास करना जरूरी है। एक ऐसा फंड या स्थाई रकम होनी चाहिए, जिसमें महिला और बालिकाओं को छात्रवृत्ति अथवा अन्य मदद/सहायता प्रदान की जा सके।
- बालिकाओं के माता–पिता को शिक्षा का महत्व समझाने के लिए समुदाय की समानता को बढ़ावा देना या जागृत करना जरूरी है।

शिक्षा के प्रसार–प्रचार के लिए समय–समय पर भारत में अलग–अलग समितियां गठित की गई हैं। इन समितियों ने निम्न सुझाव दिए हैं :

- पाठशाला इतनी पास होनी चाहिए जहां तक बालिकाएं पैदल ही जा सकें।
- शाला दूर हो तो बच्चों को घर से लाना और घर छोड़ने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- शाला का समय परिवर्तनशील होना चाहिए अर्थात प्रदेश तथा स्थानीय वातावरण के अनुसार होना चाहिए।
- शाला छोड़ देने वालों के लिए छोटे–छोटे अभ्यासक्रम तैयार करने चाहिए, विचरती तथा विमुक्त और परिभ्रमण करने वाली जातियों के लिए निवासी शालाएं शुरू की जाएं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा से ज्यादा महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाए और उन्हें आदर्श निवास की सुविधा उपलब्ध की जाए।
- अस्तित्व के लिए जूझनेवाली गरीब महिलाओं की जिंदगी के लिए उनके जीवन उपयोगी अभ्यासक्रम तैयार करना अनिवार्य है।
- बाल मजदूरों की समस्याओं को पहचान कर उनके लिए विशिष्ट सुविधाएं प्रदान की जाएं।
- पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों (ड्रोप आउट) को फिर से शाला में पढ़ाई शुरू कर उनके लिए अल्पकालीन कार्यक्रम तैयार किए जाएं।
- पढ़ाई/अभ्यास क्रम सुचारू चले तथा उबाऊ न रहे उसके लिए अध्यापकों/शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाए।
- ग्राम–शिक्षा समिति गठित कर शाला संचालन में स्थानीय समुदाय को सम्मिलित किया जाए।
- शिक्षा के आयोजन और प्रबन्ध के लिए विकेन्द्रीकरण कर लोगों को समाविष्ट करके उनकी जरूरतें और आकांक्षाओं को पूर्ण किया जाए।

स्वाश्रयी महिलाओं के लिए राष्ट्रीय पंच 1988 की श्रमशक्ति की रिपोर्ट में महिलाओं की शिक्षा के बारे में सुझाव/सिफारिश इस तरह हैं :

- प्राथमिक शाला में नियमित शिशु पालन गृह चलाना।
- प्राथमिक शाला स्तर पर सभी बालिकाओं

को मुफ्त वर्दियां पाठ्य–पुस्तकें, स्वाध्याय सामग्री और हर महीने नकद रकम प्रोत्साहन के तौर पर देना।

- ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए पशु पालन, जमीन संरक्षण, खेती और सामाजिक वनीकरण, गृह विज्ञान, डेरी विज्ञान, दूध उत्पादन जैसे व्यावहारिक और जीवनोपयोगी विषयों को समाविष्ट करना और इतिहास, विज्ञान रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र जैसे वैकल्पिक विषयों को भी सम्मिलित करना।
- महिला शिक्षिकाओं को उनके गांव या निकट के गांव में नियुक्त करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षिकाओं के लिए विशेष तालीम, आवास और भोजन की व्यवस्था निःशुल्क करना।

साक्षरता बढ़ाने के लिए विविध प्रयास हुए हैं। सन् 1988 में संपूर्ण साक्षरता अभियान शुरू किया गया। पूरे भारत में मार्च–1988 तक 434 संपूर्ण साक्षरता अभियान भिन्न–भिन्न जिलों और शहरी विस्तार में चलाए गए है। अनुसाक्षरता कार्यक्रम 211 और निरन्तर शिक्षा के 61 प्रोजेक्ट चल रहे हैं। साक्षरता अभियान में 1263.24 लाख निरक्षरों में से 965.76 लाख निरक्षर शामिल हुए और 524.73 लाख निरक्षर साक्षरता के तीसरे चरण तक पहुंचे। महिलाओं की भागीदारी बड़ी संख्या में थी। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने ज्यादा उत्साह दिखाया। महिलाओं ने स्वयं प्रेरणा और प्रोत्साहन की वजह से साक्षरता अभियान में सक्रिय भाग लिया लेकिन खासतौर पर पिछड़े तथा पहाड़ी–दुर्गम ग्रामीण क्षेत्रों में पाठ्य–सामग्री के अभाव से साक्षरता अभियान मजबूती से आगे नहीं बढ़ा।

आंध्र प्रदेश के नेल्लौर और तमिलनाडु के पुडुकोट्टई जिलों में महिला साक्षरता के परिणामस्वरूप ही नशाबंदी का अभियान चलाया गया। जहां जिला तंत्र ने साक्षरता के लिए उत्साह दिखाया है, वहां साक्षरता अभियान के अच्छे परिणाम देखने को मिले हैं।

केन्द्र सरकार प्राथमिक शिक्षा को मूलभूत अधिकार बनाना चाहती है लेकिन प्राथमिक शिक्षा को मात्र मूलभूत अधिकार बनाने से काम नहीं चलेगा। प्राथमिक शिक्षा के लिए नए कदम और सार्थक परिवर्तन लाना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. *पंचवर्षीय योजना दस्तावेज, योजना आयोग, भारत सरकार*
2. *एन. एस. एस. ओ. 44वें दौर की रिपोर्ट नं. 380, फरवरी–1991*
3. *शैक्षिक सांख्यिकी चयनिकी, 1993 – मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली*
4. *शैक्षिक सांख्यिकी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, 1988–89 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, 1993*
5. *पांचवा शैक्षिक सर्वेक्षण, 1986*
6. *भारत की जनगणना, 1991*
7. *अनुसूचित तथा जनजातियों के संवैधानिक प्रावधान – गिरधर गोमांगो*
8. *विकास कार्यक्रम, 1996–97 – सामान्य वहीवट विभाग, आयोजन प्रभाग, सचिवालय गांधीनगर*
9. *लिटरेसी केम्पेन इन इन्डिया – एन्युअल रिपोर्ट 1997–98 – नेशनल लिटरेसी मिशन, नई दिल्ली*
10. *भारत की जनगणना से संगणित–1981 – अग्रवाल यश – 'सभी बच्चों के लिए शिक्षा उद्देश्य और वास्तविकता; जर्नल शैक्षिक योजना और प्रशासन, 2–1988*
11. *भारत में स्कूली शिक्षा : क्षेत्रीय अध्ययन – एम. राजा, ए. अहमद और एस. सी. नूना, नीपा, नई दिल्ली, 1990*
12. *एज्युकेशन एण्ड हयूमन रिसोर्स डेवलपमेन्ट – अग्रवाल यश, 7 कोमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1988*
15. *प्लानिंग एज्युकेशन फोर दी फ्युचर डेवलपमेन्ट – अग्रवाल यश और अन्य– नीपा, नई दिल्ली, 1988*
16. *बेसिक एज्यूकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेन्ट – जलालुद्दीन और अन्य – दी इन्डियन सीन, युनीसेफ रिपोर्ट, नई दिल्ली, सितम्बर–1990*
17. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 समीक्षा – नई दिल्ली, दिसम्बर–1990*
18. *नई शिक्षा नीति की रिपोर्ट, 1986*
19. *राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति रिपोर्ट, 1987*
20. *केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड (शिक्षा) सम्मेलन की कार्यसूची, 1989*

लघु–कथा

अपमान

विनोद कुमार लाल

'बेटी, ये कुछ रुपये रख ले जो मैंने तुम्हारी शादी के लिए जमा करके रख छोड़े थे। हो सकता है, तुम्हें ससुराल में काम आएं।' बेटी मंजू को ससुराल के लिए विदा करते हुए रत्ना देवी बोलीं।

'नहीं मां, अगर मैंने ये रुपये ले लिए तो तुम्हारे अथक संघर्ष का अपमान हो जाएगा।' मंजूषा ने कहा।

'मैं तुम्हारी बात समझी नहीं बेटी!' रत्ना देवी ने अपनी आंखें पोंछते हुए पूछा।

'मां, तुम्हीं ने तो मुझे बताया था कि कठिन परिस्थितियों में पिता के घर से विदा होते समय तुम्हारे पास सिर्फ एक पहनी हुई साड़ी को छोड़कर कुछ भी न था।' मंजू बोली, 'पिताजी के तुम्हें छोड़ देने के बावजूद तुमने इतने कष्ट झेलकर मुझे आज इस काबिल बनाया कि मैं स्वयं अपने पांवों पर खड़ी हूं। मैं भी तो तुम्हारी ही बेटी हूं न मां! तुम्हारे जैसी संघर्षशील महिला से ये रुपये स्वीकार कर मैं तुम्हारा अपमान ही तो करूंगी। इसलिए मुझे ये रुपये नहीं, तुम्हारी तरह संघर्षशील बने रहने का आशीर्वाद चाहिए।'

बेटी की बातें सुनकर रत्ना देवी की भींगी आंखों में एक चमक लहरा उठी। ❑

उत्तर प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों के ग्रामीण विकास में ग्राम प्रधानों की भूमिका :

विगत पांच वर्षों के कार्यों पर आधारित एक मूल्यांकन

आलोक पाण्डेय*

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात देश के विकास से जुड़े योजनाकारों ने सिद्धान्त रूप में यह स्वीकार किया था कि यदि योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए तो इसका प्रभाव कुछ समय के उपरान्त पूरे देश के निवासियों को ट्रिकल डाउन प्रभाव द्वारा मिलेगा। किन्तु समाज की आर्थिक विषमताओं में अनवरत वृद्धि को देखते हुए योजनाकारों को विकास की योजनाओं को निचले स्तर पर ही बनाने तथा जनसहभागिता के माध्यम से विकास के लक्ष्यों को पूरा करने का निर्णय लेना पड़ा। पंचायती राज संस्थाओं को इन विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी दी गई जिसके अन्तर्गत ग्राम स्तर पर यह जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों को दी गई। ग्राम पंचायत के अध्यक्ष होने के नाते ग्राम प्रधानों की इन कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण भूमिका बनी। वास्तव में विगत पांच वर्षों में ग्रम प्रधानों के कार्यों के आधार पर ही विभिन्न गांवों ने विकास के क्षेत्र में अपनी प्रगति दर्शायी है। ग्राम प्रधानों के उन्हीं कार्यों को आधार मानकर प्रस्तुत लेख में उनके द्वारा ग्रामीण विकास में योगदान का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

एक कृषि प्रधान देश होने के कारण यूं तो हमारे देश के अधिकांश गांवों का प्रमुख आर्थिक आधार कृषि ही है किन्तु आदिवासी क्षेत्रों में आज भी बहुत से गांवों की आजीविका का प्रमुख स्रोत वनोपज ही बने हुए हैं तथा इन क्षेत्रों में कृषि का स्तर अभी बहुत निम्न है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार के अभाव के कारण इन क्षेत्रों के लोग आधुनिक विकास की प्रक्रिया से अछूते हैं। इस लेख में यह जानने का प्रयास किया गया है कि जनजातीय क्षेत्र के ग्राम प्रधानों द्वारा विगत पांच वर्षों में कृषि विकास या/तथा वन संरक्षण हेतु क्या कदम उठाए गए। इसके साथ ही पशुधन विकास की भी ग्रामीण विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि पशु न सिर्फ कृषि कार्य और दैनिक आवश्यकताओं में सहायक होते हैं वरन् ये एक स्थायी सम्पत्ति भी होते हैं जो ग्रामीणों की आय बढ़ाने में मददगार साबित होते हैं। इन्हीं बातों को आधार मानकर प्रस्तुत अध्ययन में पशुधन विकास के सन्दर्भ में ग्राम प्रधानों द्वारा विगत पांच वर्ष के उनके कार्यकाल में उनके द्वारा किए गए योगदान को जानने का भी प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त सभी विकास कार्यों में शिक्षा के महत्व को देखते हुए ग्राम प्रधानों द्वारा विगत पांच वर्षों में उनके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए गए योगदान को जानने का भी प्रयास किया गया है।

अध्ययन कार्य हेतु उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले को चुना गया जहां आदिवासियों का बाहुल्य है। इस जिले में कोल, गोंड, धरकार, सहरिया, पनिका, बैगा, अगरिया, चेरा, परहिया, मुसहर, घसिया, बैसवार, भुइया, धांगरा तथा ओरांव जैसी जनजातियां निवास करती हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार इस जिले की कुल आबादी 10.75 लाख थी तथा कुल जनसंख्या में आदिवासियों की संख्या लगभग 4.5 लाख की थी। राज्य सरकार द्वारा इन आदिवासियों को अनुसूचित जाति के रूप में मान्यता प्राप्त है। सोनभद्र जिले के अधिकांश गांव ऐसे हैं जहां आवागमन के साधनों का पर्याप्त अभाव है। शायद यही प्रमुख कारण भी है कि ऐसे गांव विकास की किरणों से कोसो दूर हैं।

सोनभद्र जिले में कुल 1,426 गांव हैं जिनमें आबाद गांवों की संख्या 1,346 है तथा शेष वन गांव, नगरीय क्षेत्र या गैर आबाद गांवों की श्रेणी में आते हैं। ये सभी गांव कुल 8 विकास खण्डों के अन्तर्गत आते हैं। प्रस्तुत अध्ययन हेतु सोनभद्र जिले के 4 विकास खण्डों – राबर्ट्सगंज, नगवां, म्योरपुर, और बभनी का चयन किया गया तथा पुनः चयनित प्रत्येक विकास में से पांच–पांच गांवों (कुल 20 गांवों) का चयन किया गया। विकास खण्डों का चयन जहां दैव निदर्शन पद्धति से किया गया वहीं गांवों के चयन हेतु मिश्रित पद्धति अपनाई गई। उत्तरदाता के रूप में अध्ययन हेतु चयनित सभी 20 गांवों के प्रधानों को चुना गया जो विगत पांच वर्षों से ग्राम पंचायत के अध्यक्ष के रूप में ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को संचालित कर रहे हैं। अध्ययन को तथ्यपरक तथा यथास्थिति के अनुरूप बनाने हेतु ग्राम प्रधानों के साक्षात्कार के साथ ही गांव के कुछ निवासियों तथा विकास कार्य

* आई. सी. एस. एस. आर. डाक्टोरल फेलो, गोविन्द बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद

में प्रशासन से जुड़े कार्मिकों से भी विचार–विमर्श किया गया।

चयनित ग्राम प्रधानों का संक्षिप्त विवरण

सर्वेक्षण के दौरान चुने गये 20 गांवों में से 12 गांवों में पुरुष प्रधान कार्य कर रहे थे जबकि शेष 8 गांवों में महिला प्रधान कार्य कर रही थीं (सारणी 1)। कार्यरत प्रधानों में से 16 प्रधान अनुसूचित जाति के थे जिनमें से 9 पुरुष और 7 महिलाएं थीं तथा कुल 15 प्रधान आदिवासी थे।

अधिकांश ग्राम प्रधान (65 प्रतिशत) 35 से 50 आयु वर्ग के थे जबकि पांच प्रधान (25 प्रतिशत) 21 से 35 आयु वर्ग के तथा दो प्रधान (10 प्रतिशत) 50 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के थे। ये दोनों ही पिछड़ी जाति के पुरुष थे। 35 वर्ष से कम उम्र के प्रधानों में महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में अधिक थी जिससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि युवा वर्ग में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है। जहां तक ग्राम प्रधानों में शिक्षा के स्तर का प्रश्न है तो कुल 15 प्रधान साक्षर थे जिनमें सभी पुरुष प्रधान तथा तीन महिला प्रधान शामिल हैं जबकि 5 महिला प्रधान निरक्षर थीं।

अध्ययन से प्राप्त सूचनाएं

सर्वेक्षण से प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषण से जहां एक ओर कुछ रोचक नतीजे प्राप्त हुए वहीं दूसरी ओर अधिकांश आंकड़े दर्शाते हैं कि आदिवासी क्षेत्रों के ग्रामीण विकास में ग्राम प्रधानों का योगदान सामान्य या उससे कम ही रहा है। अध्ययन हेतु लिए गए विभिन्न विषयों के सन्दर्भ में उनकी भूमिका को निम्नवत देखा जा सकता है :

कृषि विकास

जहां तक आदिवासी क्षेत्रों के ग्राम प्रधानों द्वारा कृषि के विकास का प्रश्न है तो आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम प्रधानों को कृषि विकास हेतु आवश्यक तथा उपलब्ध नवीनतम जानकारियों तथा तकनीकों की अच्छी जानकारी नहीं है। आंकड़ों से स्पष्ट है कि उन्नतशील बीज, रासायनिक खाद तथा आधुनिक कृषि यंत्रों, जैसे सामान्य रुचि के विषयों पर भी मात्र 20 प्रतिशत ग्राम प्रधानों की ही अच्छी जानकारी है (सारणी 2) जिसमें पुरुषों का प्रतिशत 25 और महिलाओं का प्रतिशत मात्र 12.5 है। कीटनाशक दवाओं और सिंचाई सुविधाएं जो कि कृषि की अच्छी पैदावार हेतु अति आवश्यक हैं, जैसे विषयों में तो प्रधानों की अच्छी चेतना का स्तर मात्र 15 प्रतिशत है। किसी भी महिला प्रधान को इन विषयों की अच्छी जानकारी नहीं है। इसी प्रकार कृषि में सहकारी समितियों की भूमिका तथा अनाज भण्डारण जैसे विषयों में क्रमशः 10 प्रतिशत और 5 प्रतिशत ग्राम प्रधानों को अच्छी जानकारी है जबकि महिला प्रधानों में इन विषयों के संबंध में अच्छी जानकारी का पूर्णतया अभाव है। इस प्रकार इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि

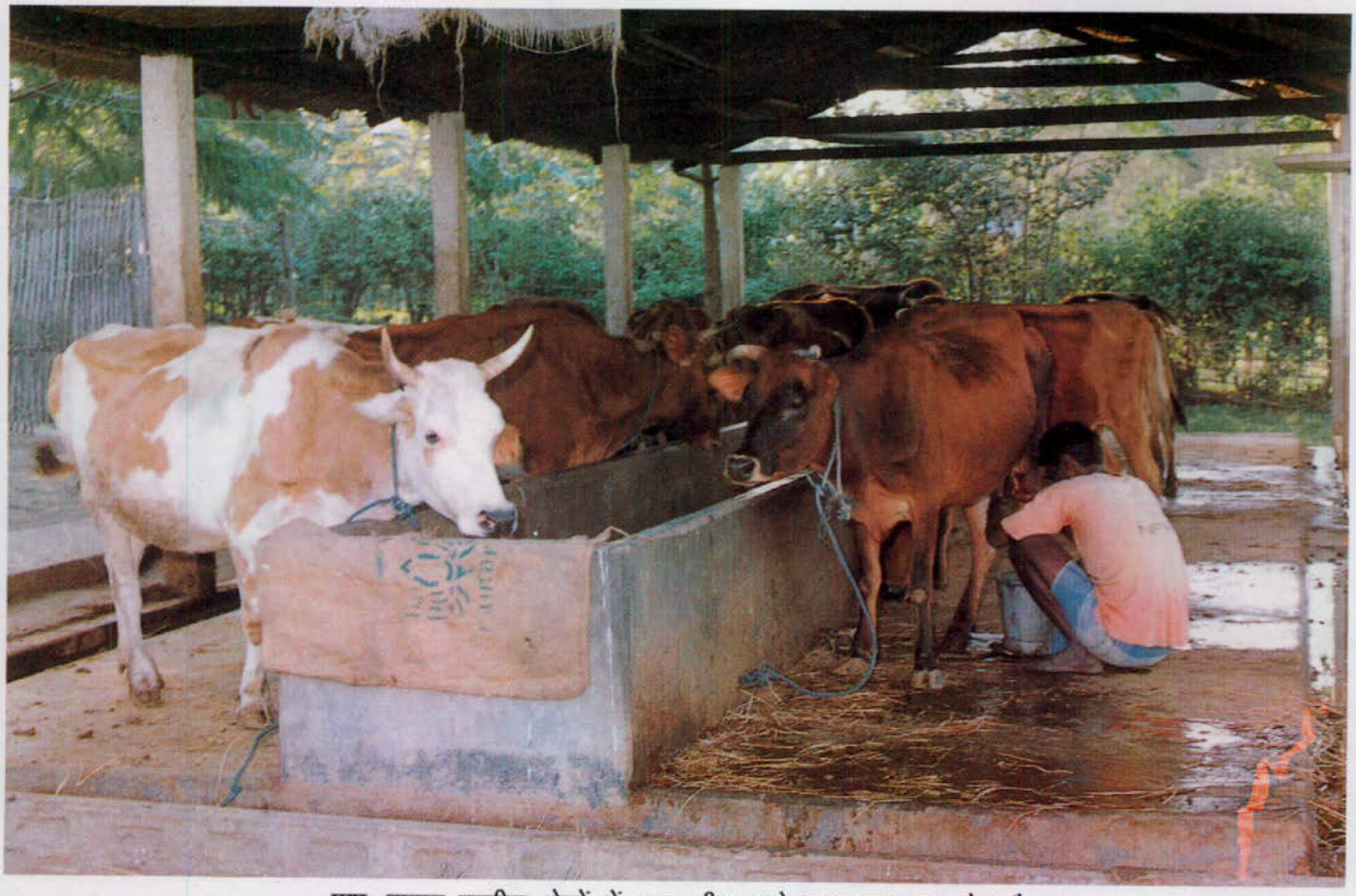

पशु–पालन ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी बढ़ाने का एक बड़ा स्रोत है

सारणी 1
ग्राम प्रधानों का संक्षिप्त परिचय

ग्राम प्रधान	संख्या	जाति			आयु वर्ग (वर्षों में)			शिक्षा का स्तर		
		अनुसूचित	पिछड़ी	सामान्य	21–35	35–50	50 से अधिक	माध्यमिक	प्राथमिक	निरक्षर
पुरुष	12	9	3	–	2	8	2	1	11	–
महिला	8	7	1	–	3	5	–	1	2	5
योग	20	16	4	–	5	13	2	2	13	5

1 चयनित गांवों के नाम – सलखन, बेलछ, मारकुण्डी, बहुआर, बसौली, धोबी, कजियारी, बाराडांड, बिछिया गोसा, बिरंचुआ, खैरी, रास पहरी, काचन, बन महरी, परनी, गायदह, परसा टोला, अधौरा, जोबेदह, तथा हथियार।

2 एक गांव में पुरुष प्रधान की मृत्यु हो ताने के कारण वहां का कार्य उप प्रधान द्वारा संचालित किया जा रहा था जो कि एक पिछड़ी जाति की महिला थी।

अच्छी जानकारियों के अभाव में इन गांवों के ग्राम प्रधानों ने कृषि विकास में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिया।

वन संरक्षण : आदिवासी क्षेत्रों में आज भी बहुत से गांवों में रहने वाले लोगों का मुख्य आर्थिक आधार वनोपज है। अतः इनसे संबंधित सूचनाएं बहुत ही महत्व की हैं। सर्वेक्षण में पाया गया कि केवल 50 प्रतिशत प्रधानों को ही इसकी अच्छी जानकारी थी जिसमें से 67 प्रतिशत पुरुष प्रधानों व 25 प्रतिशत महिला प्रधानों को इस विषय में अच्छी जानकारी थी (सारणी 3)। सामाजिक वानिकी, संयुक्त वन प्रबन्धन, पर्यावरण प्रदूषण, और भूक्षरण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर क्रमशः मात्र 15, 10, 15 और 30 प्रतिशत ग्राम प्रधानों को ही अच्छी जानकारी थी। महिला ग्राम प्रधानों में इन विषयों के संबंध में किसी को भी अच्छी जानकारी नहीं थी।

पशुधन विकास : आदिवासी क्षेत्रों के ग्राम प्रधानों में सर्वाधिक निम्नस्तरीय जानकारी पशुधन विकास के संबंध में पाई गई। ग्राम प्रधानों में संयुक्त रूप से जहां एक ओर दुधारू पशुओं की उन्नत नस्ल के विषय में ग्राम प्रधानों की अच्छी जागरूकता का स्तर 5 प्रतिशत रहा (पुरुष प्रधानों में 8 प्रतिशत तथा महिला प्रधानों में शून्य प्रतिशत) वहीं दूसरी ओर कृषि कार्यों में प्रयुक्त होने वाले उन्नत नस्ल के पशुओं (भार वाही सहित) के संबंध में जानकारी शून्य प्रतिशत पाई गई (सारणी 4) और यह स्थिति आदिवासी क्षेत्रों में पशुधन विकास के अति पिछड़ेपन का द्योतक है। आंकड़ों से यह भी स्पष्ट होता है कि कृत्रिम गर्भाधान से नस्ल सुधार के विषय में भी ग्राम प्रधानों की जागरूकता का स्तर केवल 15 प्रतिशत (पुरुष प्रधानों में 16 प्रतिशत तथा महिला प्रधानों में 12.5 प्रतिशत) ही है। जहां तक पशुओं के रख–रखाव और उनमें होने वाली प्रमुख बीमारियों का प्रश्न है तो इन दोनों विषयों में ग्राम प्रधानों की अच्छी जागरूकता का स्तर मात्र 20 प्रतिशत पाया गया (पुरुष प्रधानों में 25 प्रतिशत तथा महिला प्रधानों में 12.5 प्रतिशत)। पशुधन के विकास में सरकार की भूमिका के संबंध में ग्राम प्रधानों में अच्छी जागरूकता का स्तर मात्र 10 प्रतिशत पाया गया। इन आंकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत स्थायी सम्पत्ति के निर्माण या स्वरोजगार हेतु पशुधन उपलब्ध कराया गया है किन्तु आदिवासी क्षेत्रों में इन योजनाओं का प्रभाव नगण्य ही रहा है। इसके साथ ही साथ पशुओं के बीमा के विषय में ग्राम प्रधानों की अच्छी जागरूकता के स्तर का शून्य होना भी यह स्पष्ट करता है कि सरकारी कार्यक्रमों व सुविधाओं की जानकारी सामान्य जनता के बीच समुचित ढंग से नहीं पहुंच पा रही है और सम्भवतः यही कारण है कि सदैव पशुपालन करने वाले आदिवासी क्षेत्र के ग्रामीणों में पशुधन विकास की स्थिति अत्यंत दयनीय बनी हुई है।

सारणी 2
ग्राम प्रधानों में कृषि विकास संबंधी जागरूकता

क्रम	जानकारियों का आधार	पुरुष प्रधान			महिला प्रधान			योग		
		अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी
1.	उन्नतशील बीज	3	6	3	1	2	5	4	8	8
2.	रासायनिक खाद	3	6	3	1	2	5	4	8	8
3.	कीटनाशक दवाएं	3	5	4	–	2	6	3	7	10
4.	आधुनिक कृषि यंत्र	3	7	2	1	–	7	4	7	9
5.	सिंचाई / लघु सिंचाई	3	6	3	–	1	7	3	7	10
6.	कृषि में सहकारिता	2	5	5	–	1	7	2	6	12
7.	अनाज भण्डारण	1	6	5	–	1	7	1	7	12

सारणी 3

ग्राम प्रधानों में वन संरक्षण संबंधी जागरूकता

क्रम	जानकारियों का आधार	पुरुष प्रधान			महिला प्रधान			योग		
		अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी
1.	प्रमुख वन उपज	8	4	–	2	3	3	10	7	3
2.	सामाजिक वानिकी	3	6	3	–	2	4	3	8	7
3.	संयुक्त वन प्रबन्ध	2	2	8	–	–	8	2	2	16
4.	पर्यावरण प्रदूषण	3	3	6	–	2	6	3	5	12
5.	भूक्षरण	6	3	3	–	2	6	6	5	9

शैक्षिक विकास : जहां तक शैक्षिक विकास के सम्बन्ध में आदिवासी क्षेत्रों के ग्राम प्रधानों के योगदान की बात है तो आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्राम प्रधानों में शैक्षिक विकास के प्रति जागरूकता अन्य विषयों की तुलना में अच्छी है (सारणी 5)। जहा तक गांवों में विद्यालय में अध्यापकों की संख्या (सरकारी और गैर सरकारी) और उनके स्तर, विद्यालयों में छात्रवृत्तियां, विद्यालय में अध्यापकों की संख्या तथा शिक्षा सत्र से संबंधित जानकारियों का प्रश्न है तो ग्राम प्रधानों में इनकी अच्छी जानकारियों का प्रतिशत क्रमशः 40, 45, 35, तथा 30 पाया गया। छात्रों की संख्या के विषय में केवल 15 प्रतिशत प्रधानों में ही अच्छी जानकारी पाई गई जिसमें पुरुष ग्राम प्रधानों का प्रतिशत 25 रहा जबकि महिला ग्राम प्रधानों में यह प्रतिशत शून्य रहा। महिलाओं में यह प्रतिशत शून्य होने का प्रमुख कारण उनका घर से कम बाहर निकलना है।

यहां स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या कारण है कि इन आदिवासी क्षेत्रों के ग्राम प्रधानों में शैक्षिक विकास के प्रति सर्वोत्तम जानकारी होने के बाद भी यहां शिक्षा की स्थिति अत्यन्त निम्न स्तरीय बनी हुयी है? वास्तव में इसका कारण यह है कि आदिवासी क्षेत्रों के बच्चों को प्रायः घर के कार्यों में सहयोग देना पड़ता है जिससे कि उनकी शिक्षा बाधित होती है। इसके अतिरिक्त आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षकों की दीर्घकालिक अनुपलब्धता भी शिक्षा के विकास में बाधा उत्पन्न करती रहती है। वास्तव में विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के अन्तर्गत मिलने वाले अनुदानों और लाभों के कारण ग्राम प्रधानों का जुड़ाव शिक्षा से हुआ है न कि वास्तविक शिक्षा के विकास के उद्देश्यों के कारण। छात्रवृत्तियों के सन्दर्भ में सर्वाधिक अच्छी जानकारी का स्तर भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

ग्राम प्रधानों द्वारा ग्रामीण विकास में प्रमुख बाधाएं

आंकड़ों के आधार पर अध्ययन के पश्चात तथा सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त अन्य जानकारियों के आधार पर ग्राम प्रधानों द्वारा ग्रामीण विकास में प्रमुख बाधाओं को जानने का प्रयास किया गया जिसमें निष्कर्ष रूप से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बाधाएं परिलक्षित हुईं :

शिक्षा की कमी : जैसा कि हम सभी जानते हैं कि किसी भी विकास कार्यक्रम के लिए ज्ञान का होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिस्थितियों में ज्ञान प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन शिक्षा है। पिछलें पंचायती राज चुनाव के पूर्व प्रायः यह पाया जाता रहा है कि गांव का कोई सम्मानित व्यक्ति जो कि निःसन्देह किसी उच्च जाति का बुजुर्ग व्यक्ति ही (प्रायः पुरुष) होता था उसे प्रधान चुन लिया जाता था, भले ही वह अशिक्षित क्यों न हो। किन्तु पिछले चुनाव में कई शिक्षित युवा प्रत्याशियों ने सफलता प्राप्त की। यद्यपि इन चुनावों में एक तथ्य जो कि बहुत ही महत्व का विषय हो सकता है, वह यह रहा कि इन आदिवासी क्षेत्रों में चुनाव में विजय प्राप्त करने वाले प्रधानों में उच्च माध्यमिक (कक्षा 10) या उससे ऊपर की योग्यता रखने वालों की संख्या लगभग नगण्य रही। महिलाओं में तो यह स्थिति और भी चिन्ताजनक थी। इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम यह कि गांवों में उच्च शिक्षा का अभी भी अभाव है विशेषकर महिलाओं में, तथा दूसरा यह कि गांव में रह रहे या उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे लोगों ने स्वयं को इन पदों से (या दूसरे शब्दों में राजनीति से) दूर रखा। इसका प्रभाव यह पड़ा कि ग्राम प्रधानों में पर्याप्त शैक्षणिक ज्ञान के अभाव के कारण विकास योजनाओं की तकनीकी जटिलताओं से प्रधानों को अनभिज्ञता के कारण बहुत सी विकास योजनाएं गांवों में या तो कार्यान्वित ही नहीं हो पाईं या यदि हुईं भी तो अनुचित ढंग से।

जानकारियों का अभाव : आंकड़ों से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि अशिक्षा के कारण ग्राम प्रधानों को सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं की समुचित जानकारी नहीं है। महिला प्रधानों को सरकारी योजनाओं के बारे में कम जानकारी होने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि इनका अधिकांश कार्य इनके पतियों या घर के अन्य पुरुष सदस्यों द्वारा किया जाता है। सर्वेक्षण के दौरान महिला प्रधानों से मिलने और उनसे बातचीत करने हेतु उनके पतियों की सहमति और उनकी उपस्थिति इस तथ्य को और मजबूत करती है। अशिक्षा और अत्यधिक निर्भरता के कारण ग्राम प्रधानों द्वारा सरकारी योजनाओं की समुचित जानकारी न ले पाना और उनका अनुपालन न करा पाना भी ग्रामीण विकास में उनके योगदान में प्रमुख बाधक है।

विभिन्न प्रकार के मतभेद : अशिक्षा और लालफीताशाही के साथ ही ग्राम प्रधानों को कई बार गांव के लोगों की स्वार्थपरक गुटबन्दी का भी सामना करना पड़ता है। महिला प्रधानों को

सारणी 4

ग्राम प्रधानों में पशुधन विकास संबंधी जागरूकता

क्रम	जानकारियों का आधार	पुरुष प्रधान			महिला प्रधान			योग		
		अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी
1.	दुधारू जानवरों की प्रमुख उन्नत नस्लें	1	6	5	–	1	7	1	7	12
2.	कृषि कार्य हेतु जानवरों की प्रमुख उन्नत नस्लें	–	6	6	–	1	7	–	7	13
3.	नस्ल सुधार में कृत्रिम गर्भाधान की भूमिका	2	4	6	1	3	4	3	7	10
4.	पशुओं का रख–रखाव	3	5	4	1	1	6	4	6	10
5.	पशुओं की प्रमुख बीमारियां	3	5	4	1	2	5	4	7	9
6.	पशुधन विकास हेतु सरकारी कार्यक्रम	2	5	5	–	3	5	2	8	10
7.	पशु बीमा योजना	–	4	8	–	–	8	–	4	16

सारणी 5

ग्राम प्रधानों में शैक्षिक विकास संबंधी जागरूकता

क्रम	जानकारियों का आधार	पुरुष प्रधान			महिला प्रधान			योग		
		अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी	अच्छी जानकारी	सामान्य जानकारी	निम्न जानकारी
1.	विद्यालयों की संख्या/स्तर	6	4	2	2	1	5	8	5	7
2.	अध्यापकों की जानकारी	5	4	3	2	2	4	7	6	7
3.	छात्रों की संख्या	3	5	4	–	2	6	3	7	10
4.	छात्रवृत्तियों की जानकारी	8	4	–	1	1	6	9	5	6
5.	शिक्षा सत्र संबंधी जानकारी	5	4	3	1	2	5	6	6	8

पंचायत के सदस्यों का ही भारी दबाव झेलना पड़ता है। गांव के दबंग परिवार के लोग निजी स्वार्थों के कारण सदैव सरकारी योजनाओं में हस्तक्षेप करते रहते हैं जिसके कारण विकास योजनाओं का लाभ वांछित व्यक्तियों को नहीं मिल पाता है। विवाद गहरा होने की स्थिति में योजना का क्रियान्वयन तक रोक दिया जाता है। और इस प्रकार ग्राम प्रधानों द्वारा अपने गांव के विकास हेतु प्रारम्भ किए गए प्रयासों पर पानी फिर जाता है।

जाति व्यवस्था : गांवों में आज भी गहरी जड़ें जमाए जाति–व्यवस्था भी प्रायः ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में बाधा उत्पन्न करती है। जहां एक ओर इस व्यवस्था के कारण जातिगत विषमताएं बढ़ती हैं वहीं दूसरी ओर गुटबंदियों के कारण जनसहभागिता में भी कमी आती है। जाति व्यवस्था के आधार पर आरक्षित सीटों पर चुने गए ग्राम प्रधानों की स्थिति इस मामले में बहुत गम्भीर हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों के कारण भी ग्राम प्रधान ग्रामीण विकास में अपनी समुचित भूमिका निभा पाने में असमर्थ हुए हैं।

अनुदानों की उपलब्धता में अनावश्यक विलम्ब : ग्रामीण विकास के प्रायः सभी कार्यक्रमों में प्रारम्भ से ही यह पाया जाता रहा है कि सरकार द्वारा स्वीकृत की गई धनराशि समय पर न मिलने के कारण लाभार्थियों को उस कार्यक्रम का अनुकूलतम लाभ नहीं मिल पाता है। स्वरोजगार या सम्पत्ति सृजन द्वारा आजीविका कमाने के मामलों में यह शिकायत प्रायः देखने को मिली। सर्वेक्षण के दौरान ही कुछ लाभार्थियों से बात करने पर उन्होंने (साथ ही लगभग सभी प्रधानों ने भी) यह स्वीकार किया कि वित्तीय सहायता प्राप्त करने हेतु उन्होंने लाभ का एक बड़ा हिस्सा रिश्वत के रूप में विभिन्न स्तरों पर दिया है।

सरकारी तंत्र की भूमिका : वर्तमान में ग्रामीण विकास की अधिकांश योजनाओं का संचालन विकास खण्डों के माध्यम से किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों को गांवों तक सुचारू ढंग से लागू करवाने में सहायता प्रदान करने हेतु सरकार की ओर से पंचायत सचिवों की नियुक्ति की गई है। सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि प्रायः पंचायत सचिव की मर्जी के आधार पर ही

गांवों में किसी भी ग्रामीण विकास योजना को चलाने का कार्य किया जाता है। अशिक्षा, निर्भरता तथा लालफीताशाही के कारण सभी ग्राम प्रधान पंचायत सचिवों के निर्णय को मानने के लिए बाध्य होते हैं। विकास खण्ड के अधिकारी भी अपने विकास खण्ड में चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं की सूचनाओं हेतु इन पंचायत सचिवों पर ही आश्रित हैं। जिले के प्रत्येक विकास खण्ड में कई गांव ऐसे हैं जहां खण्ड विकास अधिकारी आजादी के 50 वर्षों बाद भी नहीं पहुंच पाए हैं। ऐसी स्थिति में सरकारी तंत्र की कार्य–प्रणाली भी ग्रामीण विकास हेतु ग्राम प्रधानों को गांवों की आवश्यकतानुसार कार्य नहीं करने देती है।

कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में अभी तक ग्राम प्रधानों की भूमिका आवश्यकता के अनुरूप नहीं रही है। अतः भविष्य में उनकी भूमिका को प्रभावशाली बनाने हेतु तत्काल कुछ कदम उठाने होंगे ताकि पंचायती राज संस्थाएं अपने उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निभा सकें। इस संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव महत्वपूर्ण हो सकते हैं :

ग्राम प्रधानों को समुचित प्रशिक्षण : ग्रामीण विकास हेतु ग्राम प्रधानों की भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि ग्राम प्रधानों को विकास से जुड़े कार्यक्रमों का समुचित प्रशिक्षण दिया जाए। उत्तर प्रदेश में नेहरू युवा केन्द्र द्वारा इस दिशा में यूनीसेफ के सहयोग से दिसम्बर 1996 में ग्राम प्रधानों और उप प्रधानों के प्रशिक्षण हेतु एक राज्यव्यापी श्रृंखला आयोजित कर एक अच्छी शुरुआत की गई थी किन्तु यह कार्यक्रम अपनी निरन्तरता को नहीं बनाए रख सका। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के कार्यक्रम निरन्तर चलाए जाए। साथ ही विषयों में भी बदलाव किया जाता रहे ताकि प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नीरसता न आने पाए।

शिक्षा का प्रचार–प्रसार : उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम प्रधानों में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा का स्तर अत्यन्त कम है। इस कमी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि गांव में निवास करने वाले शिक्षित व्यक्तियों को पंचायत के कार्यक्रमों (विशेषकर चुनावों में) में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया जाए। यद्यपि इस कार्य के लिए यह भी आवश्यक है कि देश की चुनाव व्यवस्था में सुधार लाया जाए ताकि सामान्य लोग भी बिना किसी परेशानी के चुनाव प्रक्रिया में भाग ले सकें। इसके अतिरिक्त गांवों में शिक्षा के विकास के लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों में तीव्रता तथा सुधार लाए जाने की आवश्यकता है ताकि गांवों के लोगों में शिक्षा का प्रचार–प्रसार व्यापक रूप से हो सके। यहां एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि बालिकाओं की शिक्षा हेतु और अधिक तथा विशिष्ट प्रयासों की आवश्यकता है ताकि भविष्य में पंचायत व्यवस्था में अपनी भूमिका निभाने हेतु आगे आने वाली महिलाएं सुशिक्षित हों तथा अपनी जिम्मेदारी को भली भांति निभा सकें।

सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि प्रायः पंचायत सचिव की मर्जी के आधार पर ही गांवों में किसी भी ग्रामीण विकास योजना को चलाने का कार्य किया जाता है। अशिक्षा, निर्भरता तथा लालफीताशाही के कारण सभी ग्राम प्रधान पंचायत सचिवों के निर्णय को मानने के लिए बाध्य होते हैं।

कृषि–प्रसार में प्रशिक्षण : आदिवासी क्षेत्र के गांवों में कृषि विकास को उन्नतशील बनाने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि–प्रसार शिक्षा (एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन एजुकेशन) को समुचित रूप से बढ़ावा दिया जाए ताकि इन क्षेत्रों में न केवल कृषि की गतिविधियों में तेजी आ सके वरन नकद फसलों की गहन खेती करके कृषक अपने लाभ को बढ़ा सकें। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों की मिट्टियों का परीक्षण करा कर कृषकों को मिट्टी के अनुरूप फसल उगाने, कीटनाशकों के समुचित प्रयोग और फसलों के उचित भण्डारण हेतु सुनिश्चित स्थानों की जानकारी दी जानी भी आवश्यक है।

कृषि के साथ ही साथ वन संरक्षण हेतु चलाए जा रहे कार्यक्रमों की भी जानकारी ग्रामीणों को दी जानी चाहिए ताकि वनोपज से अपनी जीविका चलाने वाले आदिवासी भी अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठा सकें। इसके लिए यह आवश्यक है कि इस समय चलाए जा रहे *संयुक्त वन प्रबन्धन* के कार्यक्रम का व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाए तथा ग्रामीणों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा की जाए।

जनसहभागिता बढ़ाने हेतु समितियों का गठन : कार्यक्रमों में जनसहभागिता को अधिकाधिक बढ़ावा दिया जाए ताकि लोग प्रत्येक कार्यक्रम से जुड़कर उससे अपनत्व महसूस कर सकें। इसके लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों के संचालन के लिए पंचायत सदस्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्तियों को भी समितियों के माध्यम से शामिल किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान रखना होगा कि समिति के सभी सदस्यों को न केवल जिम्मेदारी सौंपी जाए, वरन उन्हें कुछ अधिकार भी दिए जाएं और उन्हें सौंपे गए कार्यों के प्रति जवाबदेही को भी सुनिश्चित किया जाए।

विभिन्न प्रकार के समसामयिक जनजागरण अभियान : आदिवासी क्षेत्र के लोगों का शैक्षिक स्तर निम्न होने के कारण यह आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में समय–समय पर सामाजिक महत्व के समसामयिक विषयों के प्रति जागरूकता लाने हेतु जनजागरण अभियान चलाए जाएं जिससे यहां के ग्राम प्रधानों के अतिरिक्त सामान्य निवासी भी स्वयं को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ सकें और वे राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें।

सरकारी कार्यों से जुड़े लोगों की प्रभावी भूमिका : उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण कदम जिसके तत्काल उठाए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि सरकारी विभागों से जुड़े तथा विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे कार्मिकों द्वारा अपनी–अपनी भूमिका को और प्रभावी ढंग से निभाने का प्रयास किया जाए। वास्तव में इन लोगों की भूमिका एक पथ प्रदर्शक और सहयोगी के रूप में होनी चाहिए ताकि ग्रामीण प्रधानों के साथ ही साथ सामान्य ग्रामीण भी बिना किसी असुविधा के अपनी समस्याओं को इन तक पहुंचा सकें तथा उस समस्या का अत्यल्प समय में समुचित समाधान पा सकें। ❐

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय) पुलिस से संबंधित हिंदी की उत्कृष्ट पुस्तकों के लिए पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार न्यायिक विज्ञान, पुलिस प्रशिक्षण, पुलिस प्रशासन, पुलिस अन्वेषण, अंगुलिछाप, अपराध शाखा तथा अन्य पुलिस से संबंधित विषयों पर हिंदी में उत्कृष्ट मूल पुस्तकें लिखने अथवा अनुवाद करने के लिए सृजनशील लेखकों और अनुवादकों को उपर्युक्त योजना के द्वारा प्रोत्साहित करता है।

2. इस योजना के निम्नलिखित दो भाग हैं :

भाग I : पुलिस से संबंधित विषयों पर हिंदी की प्रकाशित पुस्तकों के लिए निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं :

(1) मूल पुस्तकें : 10,500/- रुपये प्रत्येक तक के पांच पुरस्कार।

(2) अनूदित हिंदी पुस्तकें : 4500/- रुपये प्रत्येक तक के दो पुरस्कार।

भाग-2 : ब्यूरो पुलिस से संबंधित किसी विषय पर पुस्तक लिखवाने के लिए प्रति वर्ष पन्द्रह हजार रुपये तक का एक पुरस्कार प्रदान करता है जिसके लिए इस वर्ष विषय है : "सामुदायिक पुलिसिंग"

(1) इस पुरस्कार योजना में भारत के सभी नागरिक भाग ले सकते हैं।

(2) योजना के प्रथम भाग में वे सभी पुस्तकें शामिल की जाएंगी जो 31.12.99 तक प्रकाशित हुई हैं।

3. पांडुलिपियां भी प्रविष्टि के रूप में भेजी जा सकती हैं परन्तु यदि विचार करने के बाद इन्हें पुरस्कार के लिए अनुमोदित किया गया तो पुरस्कार राशि केवल पांडुलिपि के प्रकाशन के बाद ही दी जायेगी। प्रकाशन करवाने की व्यवस्था स्वयं लेखक/अनुवादक को करनी होगी। भाग-2 के अंतर्गत निर्धारित विषय पर लिखित व पुरस्कृत पुस्तक के प्रकाशन का निर्णय मूल्यांकन समिति स्वयं करेगी।

4. पुस्तकों/पांडुलिपियों की तीन-तीन प्रतियां निर्धारित प्रपत्र के साथ इस ब्यूरो को भेजी जाएंगी। ये पुस्तकें/पांडुलिपियां वापिस नहीं की जाती हैं। पांडुलिपियों की तीन प्रतियां टाईप होनी चाहिए।

5. पुस्तकें लगभग 100 पृष्ठों की अवश्य होनी चाहिए।

6. योजना के भाग-2 के लिए आवश्यक है कि लेखक उपर्युक्त विषय पर विस्तृत रूपरेखा और अपने बायोडाटा की तीन-तीन प्रति भेजें।

7. इस योजना में वे पुस्तकें शामिल नहीं की जाएंगी जिन पर पहले ही भारत सरकार, किसी राज्य सरकार अथवा अन्य किसी सरकारी एजेंसी द्वारा कोई पुरस्कार प्रदान किया जा चुका हो अथवा इसके लिए कोई आर्थिक सहायता प्रदान की गई हो।

8. योजना के अंतर्गत प्राप्त पुस्तकें/रूपरेखाओं का मूल्यांकन एक मूल्यांकन समिति द्वारा किया जाता है जिसका निर्णय अंतिम और बाध्यकर होगा। यदि समिति निर्णय लेती है कि कोई पुस्तक अपेक्षित स्तर की नहीं है तो उसे अधिकार है कि वह कोई भी पुरस्कार घोषित न करे अथवा पुस्तक के स्तर को ध्यान में रखते हुए पुरस्कार की राशि कम कर दे।

9. मूल्यांकन समिति के निर्णयानुसार किसी भी लेखक को तीन वर्ष में एक बार पुरस्कृत किया जाएगा।

10. प्रविष्टियां भेजने की अंतिम तिथि :
उपर्युक्त संदर्भ में पुस्तक अथवा पांडुलिपि अथवा रूपरेखाएं ब्यूरो के कार्यालय में 30.09.2000 तक अवश्य पहुंच जानी चाहिए।

11. *विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :*
संपादक हिंदी, पुलिस अनुसंधान व विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय), भारत सरकार
ब्लाक-11, 3/4 मंजिल, लोदी रोड, केन्द्रीय कार्यालय परिसर, नई दिल्ली-110003

प्रपत्र

1. पुस्तक का नाम व विषय _____
2. पुस्तक का संस्करण व वर्ष _____
3. लेखक/अनुवादक का नाम और पूरा पता _____
4. प्रकाशक का नाम और पता _____
5. रायल्टी पाने वाली संस्था : अथवा व्यक्ति का नाम व पूरा पता _____
6. (क) क्या यह रचना मूल अथवा अनूदित है _____
   (ख) यह अनूदित कृति है तो मूल पुस्तक और उसके लेखक और प्रकाशक का पूरा पता _____
7. प्रमाणित किया जाता है कि यह अनूदित कृति है तथा इसके लेखक और प्रकाशक से हिंदी अनुवाद तथा प्रकाशित करने की अनुमति ले ली गई है।
8. प्रमाणित किया जाता है कि इस पुस्तक की मूल कृति, अनुवाद अथवा पांडुलिपि पर भारत सरकार, किसी राज्य सरकार अथवा किसी अन्य एजेंसी द्वारा परिचालित कोई पुरस्कार अथवा किसी तरह की कोई आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई है।

दिनांक :

हस्ताक्षर (लेखक/अनुवादक)

डीएवीपी 20001/60

कहानी

किनारा

महेश चन्द्र जोशी

सावित्री ससुराल में पहला दिन बिताते ही व्याकुल हो गई।... कितनी खुशी थी उसे, गोविन्द को अपना जीवन साथी बनता देखकर। लेकिन फिर उसकी तनी भौंहें, माथे पर पड़ी सलवटें, रूखा व्यवहार देखकर उसे लगा कि जैसे उसके भीतर कुछ चटक रहा है।... कुछ बिखर रहा है।... वह कुछ तोड़ देगा।... फोड़ देगा।...

"ऐसा क्यों?" उसने भीगे हुए नेत्रों के दौरान स्वयं से पूछा। गोविन्द से पूछा। एकदम नजदीकी सम्बन्धियों से पूछा। कहीं से कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। वह असमंजस में पड़ गई।

तीसरे दिन गोविन्द ने अपना सामान समेट लिया– दूर बहुत दूर नौकरी पर लौटने के लिए – अकेले। एकदम अकेले जाने के लिए।

सावित्री का दिल चित्कार उठा – यह क्या है?... अकेले क्यों?... उसे साथ क्यों नहीं ले जा रहा है?... उसके रवाना होते ही उसे लगा था कि क्या यही एक इन्सान की पहचान है?... धर्म है?... एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना है?.... विवेक से उठाया हुआ कदम है?... इस तरह उस पर आ गिरी बिजली ने जैसे उसका सब उजाड़ कर रख दिया।

फिर भी उसकी सांस चल रही है। दिल की धड़कन तेज हो रही है।... वह सोचती रही।

सास ने समझाया – 'बहू तू चिन्ता मत कर। धीरे–धीरे सब ठीक हो जाएगा।... आखिर यह हमारा बेटा है।... हमसे ऐसे दूर नहीं हो सकता।... कभी नहीं।...' कहते–कहते उनका गला रुंध गया था। वे आगे नहीं बोल सकी थीं।

तभी उस दौरान कुछ सगे–सम्बन्धियों के स्वर उभरे – 'वह ऐसा तो न था।... भगवान जाने किसने उस पर ऐसा जादू–टोना कर दिया कि वह हमसे ही उखड़ा–उखड़ा सा रहा।... अरे किसी का पग ही ऐसा पड़े है कि या तो जमा जमाया घर उजड़ जावे है या चौपट घर बस जावे है।

यह सुन–सुन कर सावित्री अपने भाग्य को कौसती। बिना देखे भाले, माता–पिता के उसे घर से धकेल देने पर झुंझलाती। भगवान पर आस्था के बोझ तले अपने को दबा हुआ प्रतीत करने लगती।...

कुछ दिन बीते। ना तो गोविन्द आया ना उसका कोई पत्र। जबकि पिता ने उसे दो–तीन पत्र लिख डाले थे।

हुआ क्या उसे? – सब आश्चर्य व चिन्ता में डूब गए।

आखिर सावित्री पर ही सबने जोर डाला कि वह गोविन्द को पत्र लिखे। उसने भी मानस बनाया कि वह उसे पत्र लिखे। पर जब–जब वह उसे पत्र लिखने बैठती तो उसके सामने उसका खूंखार सा चेहरा घूम जाता। समझ ना पाती कि वह उसे क्या लिखे? किस आधार पर लिखे? कैसे अपना दिल खोलकर उसके सामने रख्खे?...

कुछ वर्षों पूर्व सावित्री ने मिडिल पास किया था। माता–पिता की गरीबी व लड़की को अधिक न पढ़ाने के उनके घातक विचार ने उसकी आगे पढ़ने की तीव्र इच्छा को कुचल कर रख दिया था।... अब तो कभी–कभी उसे लगने लगा था कि उसने जो कुछ पढ़ा था, वह भी जैसे समय की मार ने सब चौपट कर रख दिया है। नाम के लिए शादी उसके भाग्य में लिखी थी, वह हो गई। वह भी एक सुन्दर, पढ़े–लिखे व अच्छी नौकरी–पेशा लड़के से।... फिर।

ढ़ाई–तीन माह बीत जाने पर गोविन्द का पत्र आया, पिता के नाम। उसे लगा जैसे जीवन के फैल रहे रेगिस्तान में कुछ हरियाली उग आई है। पर वह पत्र पढ़कर जानना चाहती थी कि इस हरियाली में टिके रहने की शक्ति कितनी है? परन्तु उसे सास ने लड़खड़ाते स्वर में मुंह जुबानी ही बता दिया – "वह ठीक तरह है।... छुट्टी मिलते ही आएगा।... और–और आता रहेगा...।"

यह सुनने के बाद उसकी खुशी रुक–रुक कर बिखरती रही। लेकिन एक दिन जब उसने, सफाई करते समय स्वसुर के पलंग को पूरी तरह झटका तो गोविन्द का, शादी के बाद आया, एकमात्र पत्र उसके हाथ लगा। उसने पढ़ा – पिताजी, आपके तीन–चार पत्र मिले। ऐसा लगा जैसे आज तक आप मेरी भावनाओं, इच्छाओं को बिल्कुल नहीं समझे। मैंने तो आप पर विश्वास कर लड़की को शादी से पहले देखा तक नहीं। पर आपने तो एक अनपढ़ व बदसूरत सी लड़की मेरे पल्ले बांधने का दुःसाहस ही कर डाला। दूसरे शब्दों में कहूं तो आपने मेरे साथ विश्वासघात किया।

आपको मालूम होना चाहिए कि मैं एक प्रतिष्ठित फर्म में एक प्रतिष्ठित पद पर हूं। बड़े–बड़े लोगों के साथ मेरी उठ–बैठ है। इस पर यदि मेरी पत्नी जाहिल व कुरूप हो तो मेरी क्या शान रहे?

आखिर में, मैं इतना ही कहूंगा कि अब आप लोग बड़े भाई साहब की तरह मेरे से भी पैसों की कोई उम्मीद नहीं रखना। ना किसी और संबंध की....। पढ़ते–पढ़ते सावित्री को लगा जैसे वह सातवें आसमान से नीचे गिर गई है। तभी उसके मुंह से एक भयंकर चीख निकली। वह पलंग का सहारा लेकर नीचे बैठ गई।

"क्या हुआ?" कहते–कहते सास ने लपककर, उसके समीप आते–आते घबराए स्वर में पूछा– "क्या हुआ बहू?"

सावित्री ने जैसे कुछ सुना नहीं। पर सास ने जैसे ही उसके हाथ के समीप पड़ा हुआ पत्र देखा तो वे स्तब्ध रह गईं। कुछ देर तक वे एक अपराधी की तरह खड़ी रहीं। फिर रुंआसे स्वर में उसे झकझोरते हुए बोलीं– 'उठ बहू, उठ।' शायद तू अब हमको भी माफ नहीं करेगी। पर सच मान कि हम, तुझे यह पत्र पढ़ाकर तेरे दिल को दुखाना नहीं चाहते थे।'

यह सुनते ही सावित्री ने धीरे–धीरे अपनी तिरछी नज़र सास की ओर घुमाई जैसे वह, उनके कथन की सच्चाई को तोलना चाहती हो।

सास का कथन जारी था – "बेटी, तेरे स्वसुर जी ने रिटायर होने तक जो कुछ बचाया वह सब समय–समय पर बेटे–बेटियों की पढ़ाई व शादी में लगा दिया। हर मां–बाप की तरह हमें भी उम्मीद थी कि बेटे, हमारे बुढ़ापे का सहारा बनेंगे? लेकिन बड़े बेटे के लिए पैसों वाले घर की बेटी लाकर हमने चोट खाई। इसलिए दूसरे बेटे के लिए गरीब घर की सीधी–सादी बहू लाए ताकि सुःख–शांति से हमारा बचा हुआ जीवन बीत जाए। पर...।" कहते–कहते वे रो पड़ीं।

सावित्री को लगा जैसे उसने भी इस घर के दो बेटों की तरह इन लोगों का दिल दुखाने में सहयोग दिया है। पर वह बोली कुछ नहीं। एक झटके से उठकर कमरे से बाहर निकल गई।

कुछ दिन सबके करीब–करीब खामोशी में ही बीते। फिर विशेष आग्रह करने पर सावित्री पीहर गयी। लौटी तो उसके एक बड़े थैले में बड़े भाई की पुरानी किताबें व कापियां थीं। सास के पूछने पर उसने दृढ़–विश्वास भरे स्वर में कहा– "मैं अब आगे की पढ़ाई करुंगी और कुछ योग्य होने पर सम्मानजनक नौकरी भी।"

सास–स्वसुर को लगा जैसे उन्हें अपने पुण्य कार्यों का फल अवश्य मिलेगा। उन्होंने अपनी सामर्थ्यानुसार सावित्री को आगे बढ़ने के लिए पूरा–पूरा सहयोग दिया। परिणामस्वरूप वह पढ़–लिखकर एक दिन, एक अच्छे प्राइवेट स्कूल में अध्यापिका के पद पर लग गई। देखते ही देखते उसकी दशा स्कूल में पढ़ाकर व कुछ ट्यूशन करने से सुधरने लगी। उसके ससुराल वालों की दशा पलटने लगी।

अभी उनकी यह सुःखद स्थिति बने हुए कुछ समय ही हुआ था कि एक दिन, माता–पिता को, बाहर बरामदे में बैठे–बैठे लगा कि जैसे कुछ दूरी से गोविन्द उनकी ओर आ रहा है। वे सुःखद आश्चर्य से भर गए।

पर जब मुरझाया चेहरा, बढ़ी दाड़ी व उलझे–उलझे बालों के साथ वास्तव में ही गोविन्द उनके समीप आया तो पूर्ण विश्वास होते ही मां का तनिक रोष भरा स्वर गूंजा– "आखिर आ ही गई घर वालों की याद।"

गोविन्द खामोशी से उन दोनों के सामने गर्दन झुकाए खड़ा हो गया।

"अब कैसे आया?" पिता का तनिक क्रोध भरा स्वर था।

"फर्म वालों ने गलत आरोप लगाकर मुझे नौकरी से...।"

"क्या?" पिता का आश्चर्य भरा स्वर बीच में ही गूंज उठा– क्या वास्तव में तुझे नौकरी से निकाल दिया गया?"

गोविन्द ने स्वीकारते हुए गर्दन हिला दी।

"हाय राम, यह क्या हुआ? कैसे हुआ?" मां का घबराया स्वर था।

"तभी इसे हमारी याद आई।" पिता उत्तेजित स्वर में बोले– "अरे बेटा पैदा होता है तो घर में घी के चिराग जलते हैं।... लेकिन... लेकिन जब इस जैसे बेटे पैदा होते...।" कहते–कहते उन्हें खांसी आने लगी। गला सूखने लगा। पत्नी ने उन्हें शान्त हो जाने को कहा। और भीतर की ओर पानी लाने के लिए लपकीं। उनके लौटने तक गोविन्द मूर्तिवत ही खड़ा था। पर पति का कथन फिर से अवश्य शुरू

हो गया था – "तुझ जैसे बेटे से अच्छी तो वह दूसरे घर की बेटी ही है, जिसने सारी मुसीबतों के बावजूद खुद को आगे बढ़ाया। इस उजड़े घर को बसाया।"

"बस, बस, बहुत हो गया।" पत्नी ने पति को, पानी से भरा लौटा थमाते हुए, मीठी झिड़की दी। फिर दो–तीन पल पश्चात् गोविन्द की ओर देखती हुई बोलीं– "जो होना था, वह हो गया।... जा भीतर जाकर...।" वे बोलते–बोलते चुप हो गईं। कुछ दूरी से उन्हें सावित्री आती हुई नज़र आई।

मां को एकटक, एक ओर देखते हुए, गोविन्द की दृष्टि भी उधर उठी। उसे लगा जैसे एक सुन्दर व सुशिक्षित महिला, उनकी ओर आ रही है। पर फिर कुछ पल पश्चात् उसने इधर–उधर दृष्टि घुमाने की कोशिश की। मां के कहने पर – "आ गई सावित्री तू स्कूल से?" गोविन्द की आश्चर्य–भरी दृष्टि वास्तव में नजदीक आती हुई सावित्री पर जा चिपकी। देखते–देखते उसकी आंखों के सामने घूम गई – लहंगा व कुर्ती पहने, मुंह तक, घूंघट से हल्के–हल्के दागों को ढके चेहरे वाली, दुबली पतली एवं सांवली लड़की। और अब? अब वही लड़की सुन्दर चेहरा लिए, भरे–भरे शरीर को, अच्छी–सी साड़ी में सलीके से लिपटाए, कंधे पर बैग लटकाए, उस पर एक उड़ती दृष्टि डालकर, करीब–करीब उसके समीप आ खड़ी हुई है।

"आज जल्दी कैसे?" सास ने अपनत्व भरे स्वर में सावित्री से पूछा।

"कल से बच्चों की परीक्षाएं हैं।... इसलिए आज जल्दी छुट्टी हो गई।" सावित्री भीतर ही भीतर होती उथल–पुथल के बीच बोली–"बस अब दो ट्यूशन और निबटाने हैं।" कहते–कहते वह भीतर की ओर चल दी।

"देखा तूने।" पिता, गोविन्द की ओर देखते हुए तनिक उत्तेजित स्वर में बोले।

गोविन्द ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे लगा कि वास्तव में जब किसी का समय विपरीत होता है तब उसके लिए फूल भी कांटे बन जाते हैं।

"जा भीतर जा।" मां का अपनत्व मिश्रित तनिक तेज स्वर था।

गोविन्द एक आज्ञाकारी बेटे की तरह तुरन्त भीतर की ओर चल दिया। फिर कुछ देर बाद अपने पुराने कमरे में जा पहुंचा। वहां सावित्री विचार मग्न–सी पलंग पर बैठी थी। गोविन्द को देखते ही चौंककर, एक झटके से, पलंग पर से उठती हुई, आश्चर्य भरे स्वर में बोली– "आप।"

"नहीं पहचाना।" गोविन्द, सावित्री को कुछ पल एकटक निहारता हुआ आश्चर्य–भरे स्वर में बोला।

"आपको।.... एक बार गलती हो गई।... बार...बार .... नहीं. ... अब कोई गलती....।" सावित्री का तीखा स्वर था।

"गलती तो मुझसे हुई।... तुम्हें पहचानने में...। उसी की सजा...। क्षमा.... क्षमा नहीं....।" कहते–कहते गोविन्द का अश्रुमेघ उमड़ पड़ा। पल दो पल में बरसने भी लगा। यह देखकर सावित्री का पाषाण हुआ हृदय दूसरे ही पल पिघलने लगा। ❑

श्री पटवा का वन प्रबंध को नई दिशा देने का आह्वान

केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री, श्री सुंदर लाल पटवा ने एक ऐसी वन प्रबंध नीति विकसित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जो न केवल वनों के वैज्ञानिक प्रयोग के लिए संरक्षण और संवर्धन का मार्ग प्रशस्त करे बल्कि वनवासियों के हितों का भी ध्यान रखे। 20 जून को नई दिल्ली में संयुक्त वन प्रबंध पर आयोजित दो–दिवसीय कार्यशाला के समापन अवसर पर बोलते हुए श्री पटवा ने कहा कि वन उत्पादों पर आधारित रोजगार के अवसर उत्पन्न करके भूमिहीनों की दशा में सुधार किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि कुल जनसंख्या का लगभग एक–तिहाई से अधिक भाग वनों के पास रहता है। इसलिए यह जरूरी है कि वनों से संबंधित कोई भी नीति बनाते समय इनके हितों को ध्यान में रखा जाए। श्री पटवा ने आशा व्यक्त की कि यह अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला संयुक्त वन प्रबंध को नई दिशा प्रदान करेगी, जिससे न केवल वनों और पर्यावरण संसाधनों के संरक्षण में सहायता मिलेगी, बल्कि वनवासियों का आर्थिक विकास भी होगा।

श्री पटवा ने जानकारी दी कि अब लघु वन उत्पादों के प्रयोग का अधिकार, ग्राम सभा को दे दिया गया है। उन्होंने कहा कि बेहतर वन–प्रबंध पर विचार करते समय हमें हमारी राष्ट्रीय और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा। वन–प्रबंध और संरक्षण कार्यक्रमों में स्थानीय समुदायों की भागीदारी से गरीबी उन्मूलन, पर्यावरण संतुलन बनाए रखने और वन उत्पाद बढ़ाने में सहायता मिल सकती है। उन्होंने कहा कि स्वयंसेवी संस्थाएं संयुक्त वन–प्रबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निबाह सकती हैं। वर्ष 1988 की राष्ट्रीय नीति में संयुक्त वन–प्रबंध में सहभागी प्रयासों पर जोर दिया गया। उन्होंने बताया कि 22 राज्यों में 36,000 सयुंक्त वन प्रबंध समितियां लगभग एक करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र का प्रबंध कर रही हैं।

श्री पटवा ने कहा कि पर्यावरण और वन तथा ग्रामीण विकास मंत्रालयों का साझा लक्ष्य आर्थिक विकास द्वारा गरीबी उन्मूलन करना है। इसलिए दोनों मंत्रालयों के बीच लगातार विचारों का आदान–प्रदान महत्वपूर्ण है।

दो–दिवसीय कार्यशाला का आयोजन देहरादून स्थित भारतीय वन अनुसंधान और शिक्षा परिषद द्वारा किया गया। ❑

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक

डा. नरेश चन्द्र त्रिपाठी

पूंजी, उत्पादन का अनिवार्य घटक है। कृषि और ग्रामीण क्षेत्र का विकास एक बड़ी सीमा तक पूंजी की उपलब्धता पर निर्भर है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेषतः कृषि क्षेत्र में, निवेश के लिए पूंजी की उपलब्धता ऋण पर निर्भर है। कृषि कार्य में विविध उद्देश्यों के लिए प्रायः अल्पकालिक, मध्यकालिक और दीर्घकालिक ऋणों की आवश्यकता होती है। भारत में अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण प्रतिवेदन (1954) ने सहकारिता को तीनों

प्रकार की साख आपूर्ति के लिए एक उपयुक्त माध्यम माना था। इसी पृष्ठभूमि में अल्पकालीन और मध्यकालीन साख की व्यवस्था प्राथमिक सहकारी कृषि साख समितियों द्वारा जिला सहकारी बैंकों के माध्यम से की जाती है। दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था सहकारी साख ढांचे में सहकारी भूमि बंधक बैंक या भूमि विकास बैंकों द्वारा की जाती है। उत्तर प्रदेश में इस दायित्व का वहन विगत 40 वर्षों से उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक लि. द्वारा किया जा रहा है।

उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक का इतिहास

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने दीर्घकालिक ऋणों की व्यवस्था हेतु प्रत्येक राज्य में भूमि बंधक बैंक स्थापित करने का सुझाव दिया था। इस समिति की संस्तुति पर भारत के विभिन्न राज्यों में ऐसे बैंकों की स्थापना का कार्य प्रारम्भ हुआ। उ.प्र. में कार्यरत उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक लि. का उद्भव 12 मार्च 1957 को हुआ, जब उ.प्र. कोआपरेटिव लैण्ड मारगेज बैंक के नाम से इसका पंजीकरण हुआ। औपचारिकताओं को पूर्ण करने और आवश्यक व्यवस्था के पश्चात् बैंक ने मई 1960 से अपना कार्य प्रारम्भ किया। 1960 में बैंक ने 30 चयनित जिला मुख्यालयों पर शाखाएं खोलने का निर्णय लिया। इस प्रकार उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक ने मई 2000 में ग्रामीण क्षेत्रों में दीर्घकालीन ऋणों की आपूर्ति करते हुए 40 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। इन चार दशकों में संस्था ने यू.पी. कोआपरेटिव लैण्ड मारगेज बैंक, उ.प्र. भूमि विकास बैंक, उ.प्र. कृषि एवं ग्राम्य विकास बैंक तथा अब उ.प्र.

सहकारी ग्राम विकास बैंक के नाम से ग्रामीण एवं कृषि विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया ही है।

बैंक का प्रबन्ध

उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक एक सहकारी संगठन है। अतएव इसकी सर्वोच्च शक्ति सामान्य निकाय में निहित है। सामान्य निकाय में प्रत्येक शाखा से एक प्रतिनिधि चुनकर आता है जिसका चुनाव सम्बन्धित शाखा के समस्त सदस्य करते हैं। इन प्रतिनिधियों का कार्यकाल तीन वर्ष होता है।

बैंक का प्रबन्ध एवं संचालन प्रत्यक्षता संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। संचालक मण्डल के दो तिहाई सदस्य उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नामित किए जाते हैं तथा शेष सदस्यों का चुनाव सामान्य निकाय के सदस्यों द्वारा किया जाता है। संचालक मण्डल बैंक के कार्य–संचालन हेतु नीतिगत निर्णय लेता है।

संचालक मण्डल अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष का चुनाव करता है। अध्यक्ष ही संचालक मण्डल और सामान्य सभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

बैंक की पूंजी

उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक की कार्यशील पूंजी, अंशपूंजी, निक्षेपों, ऋण पत्रों और ऋणों के माध्यम से एकत्र की जाती है। मार्च 1961 तक बैंक की कुल कार्यशील पूंजी 0.16 करोड़ रुपये थी जो मार्च 1999 में बढ़कर 1916.75 करोड़ रुपये हो गई। विगत चार दशकों में बैंक की पूंजी वृद्धि को तालिका में प्रदर्शित किया गया है :

शाखाएं एवं सदस्यता

बैंक का कार्य शाखाओं के माध्यम से सम्पन्न होता है। प्रारम्भ में बैंक ने तीस शाखाओं के माध्यम से अपना कार्य प्रारम्भ किया था, जिनकी संख्या अब 321 हो गई है। इस समय लगभग समस्त तहसील मुख्यालयों पर उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक की शाखाएं कार्यरत हैं।

शाखाओं के साथ ही बैंक की सदस्यता में भी वृद्धि हुई है। प्रत्येक कृषक जो ऋण लेना चाहता है उसे बैंक की सदस्यता ग्रहण करनी होती है। 1961 में 604 सदस्यों वाले इस बैंक की सदस्य संख्या मार्च 1999 में 36 लाख से अधिक हो गई।

उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक की पूंजी वृद्धि 31.3.1999 तक
(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष	अंश पूंजी	निजी पूंजी	कार्यशील पूंजी
1960–61	0.15	0.16	0.16
1970–71	6.10	6.80	93.81
1980–81	28.22	44.66	361.85
1990–91	53.27	106.53	711.09
1998–99	107.58	227.24	1916.75

स्रोत – उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक की डायरी – 2000

ऋण के उद्देश्य, प्रक्रिया और ऋण वितरण

बैंक वर्तमान समय में विविध प्रयोजनों के लिए ऋण वितरित करता है। ये उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- लघु सिंचाई : कूप निर्माण, बोरिंग, पम्पसेट, नलकूप, नाली एवं ड्रिप सिंचाई व्यवस्था हेतु।
- कृषि यंत्रीकरण : ट्रैक्टर, ट्राली, पावरट्रिलर, थ्रेशर आदि की खरीद के लिए।
- औद्योगिक विकास एवं वानिकी : सेब, आम, अमरूद, नींबू, संतरा आदि के उद्यानों के लिए।
- पशु पालन : गाय, भैंस, बकरी पालन, कुक्कुट पालन, सुअर पालन, खरगोश पालन आदि के लिए।
- मत्स्य पालन : मत्स्य पालन हेतु तालाबों का विकास।
- विविध योजनाएं : गोबर गैस संयत्र, डनलप कार्ट आदि के लिए।
- अकृषि क्षेत्र : लघु एवं कुटीर उद्योग तथा मिनी ट्रक आदि खरीदने के लिए।
- आवासीय योजना : ग्रामीण आवासीय इकाइयों के निर्माण हेतु।

उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक भूमि को बंधक रखकर ऋण प्रदान करता है। प्रदत्त ऋणों की अदायगी 5 से 15 वर्ष के बीच होती है। विभिन्न प्रयोजनों के लिए ब्याज की दरें भिन्न–भिन्न होती हैं।

निर्बल वर्ग के किसानों को विशेष सुविधाएं

लघु एवं सीमान्त कृषकों को उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक द्वारा लघु कृषक विकास अभिकरण एवं ग्राम विकास अभिकरण के माध्यम से निम्नांकित सुविधाएं प्रदान की जाती हैं –

- लघु और सीमान्त कृषकों, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों से ऋण का केवल 3.7 प्रतिशत अंशदान लिया जाता है जबकि अन्य कृषकों से 5 प्रतिशत अंशदान लिया जाता है।
- लघु सिंचाई सीमान्त कृषकों द्वारा लिए गए ऋण का 33 प्रतिशत तथा लघु कृषकों को 25 प्रतिशत अनुदान शासन द्वारा बैंक के माध्यम से उपलब्ध है।
- इस वर्ग के सदस्यों से बैंक प्रशासकीय शुल्क 50 पैसे प्रति सैंकड़ा लेता है जबकि अन्य सदस्यों के लिए यह एक रुपया प्रति सैकड़ा है।

ऋण वसूली

प्रदत्त ऋणों की समय से वसूली किसी भी वित्तीय संस्था के लिए आवश्यक तत्व है। उ.प्र. राज्य सहकारी ग्राम विकास बैंक वसूली के प्रति पर्याप्त सतर्क है। यही कारण है कि बैंक वसूली अन्य संस्थाओं की तुलना में काफी बेहतर है। बैंक द्वारा वसूली के लिए अप्रैल से जून तक विशेष अभियान चलाया जाता है।

(शेष पृष्ठ 44 पर)

रेशम कीट पालन
एक रोजगार परक उद्योग

भानु प्रकाश पाठक

भारत विश्व में रेशम उत्पादन के क्षेत्र में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। भारत में प्रतिवर्ष 1,50,000 टन रेशम का उत्पादन होता है जब कि यहां रेशम की मांग 22,000 टन है। रेशम उद्योग अन्य कृषि फसलों की तुलना में अधिक लाभदायी है। रेशम उद्योग पर्यावरण के दृष्टिकोण से भी एक लाभप्रद कुटीर उद्योग है। श्रमजनित होने के कारण इस उद्योग में विभिन्न स्तरों पर महिलाओं, वृद्धों तथा शारीरिक रूप से कमजोर या विकलांग व्यक्तियों को रोजगार मिलता है।

रेशम या सिल्क का उत्पादन एक प्रकार के कीट द्वारा किया जाता है जिसे बोलचाल की भाषा में 'रेशम का कीड़ा' कहा जाता है। इस कीट का वैज्ञानिक नाम 'बाम्क्सिमोरी' है। इसके अतिरिक्त टसर और एरी कीटों से भी रेशम प्राप्त होता है। नब्बे फीसदी रेशम कीट शहतूत के वृक्ष पर उसके पत्तों को खाकर पलते हैं। बाकी दस फीसदी रेशम कीट टसर, अर्जुन, साल, बेर और अन्य जंगली वृक्षों पर पलते हैं। एरी नामक रेशम कीट अरण्डी के पेड़ों पर पाया जाता है और उसके पत्तों को खाता है।

शहतूती रेशम सबसे अच्छे किस्म का माना जाता है। रेशम की उत्पादकता प्रति एकड़ शहतूत की पत्ती के उत्पादन पर निर्भर करती है। सामान्यतः एक एकड़ में पांच से छह हजार किलोग्राम पत्ती का उत्पादन होता है। एक एकड़ शहतूत के वृक्षों पर पांच औंस रेशम कीट के अण्डों का पालन होता है जिनसे लगभग 175 किलोग्राम कोया का उत्पादन प्रति वर्ष किया जा सकता है। शहतूत की उन्नत खेती कर इस उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

शहतूत के पत्तों को घर के आस–पास या खेत की मेड़ों पर वृक्ष के रूप में भी लगाया जा सकता है। रेशम कीट का सम्पूर्ण जीवन काल 22 से 28 दिनों का होता है। मादा रेशम कीट एक बार में पांच सौ से छह सौ अंडे देती है। अंडों से निकलने वाले कीड़े बहुत ही सूक्ष्म होते हैं और इस अवस्था में इनके पोषण में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। कीट को इस प्रारम्भिक अवस्था में कोमल व छोटे आकार की शहतूत की पत्तियां खाने को दी जाती हैं। पाले गए रेशम कीट विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए 22 से 28 दिनों के अपने जीवनकाल में अपने वजन को दस हजार गुना और आयतन को आठ हजार गुना बढ़ा लेते हैं। रेशम का एक कीड़ा अपने सम्पूर्ण जीवन काल में 25 से 30 ग्राम शहतूत की पत्तियां खाता है। बीच–बीच में ये पुराने केंचुल शरीर से उतारते जाते हैं तथा पत्ती खाने की अवस्था में ये कीट चार बार केंचुल उतारते हैं। जब रेशम कीट कोया बनने के लिए तैयार होता है तो वह पत्ती खाना बन्द कर देता है और इसका रंग कुछ पारदर्शी हो जाता है। ऐसे रेशक कीट को पेड़ से अलग कर उचित स्थान पर कोया बनने के लिए रख देना चाहिए। मौसम के अनुसार अड़तालीस से बहत्तर घंटे में कोया निर्माण पूरा हो जाता है। तैयार ककून (कोये) को तीन दिन तक उबलते पानी में डालने से कीट मर जाते हैं। यह प्रक्रिया 'स्टिफेनिंग' कहलाती है। ककून को उबलते पानी में डालने से रेशम के धागे मुलायम हो जाते हैं और आसानी से अलग– अलग किए जा सकते हैं। एक रेशम कीट लगभग 1000 से 1500 मीटर लम्बाई का धागा बनाता है जो अपने समान मोटाई के स्टील के तार से भी अधिक मजबूत होता है। रेशम कीट अपने जीवन काल के अंतिम तीन चार दिनों में अपने सिर को इधर–उधर हिला–हिला कर अपने चारों ओर अपनी लार ग्रंथियों द्वारा स्रावित पदार्थ से एक ही लम्बे धागे का खोल बनाता है, इसे ही ककून कहते हैं।

रेशम कीट पालन से लाभ

रेशम उद्योग कृषि पर आधारित एक महत्वपूर्ण उद्योग है। श्रमजनित होने के कारण इस उद्योग में रोजगार के भरपूर अवसर उपलब्ध हैं। यह उद्योग अन्य कृषि फसलों की अपेक्षा अधिक लाभदायी है जो ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं, महिलाओं एवं वृद्धों को रोजगार देकर उनकी आर्थिक दशा सुधारता है। इस उद्योग को सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में स्थापित कर सफलतापूर्वक नियमित आय प्राप्त की जा सकती है। इस उद्योग से महिलाओं के श्रम एवं अतिरिक्त समय का सदुपयोग होता है और उन्हें धन की भी प्राप्ति होती है। इस उद्योग के लिए न तो किसी विशेष पूंजी की आवश्यकता होती है और न ही जमीन पर ज्यादा खर्च की। रेशम कीट पालन से भूमि–हीनों को भी रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकते हैं। रेशम कीट पालन उद्योग में अपने क्षेत्र में ही रोजगार मिल जाने से ग्रामीणों का शहरी पलायन भी रुक जाता है। इसे खेती व अन्य कार्यों के साथ भी किया जा सकता है। इस उद्योग में पूरे साल नियमित आय प्राप्त होती रहती है तथा कम लागत व थोड़े समय में ही उत्पादन शुरू हो जाता है। रेशम कीट पालक यदि स्वयं चरखा चलाकर धागाकरण (रीलिंग) शुरू कर दें तो उनकी आय बढ़ जाती है, क्योंकि दस–बारह किलो कोये (ककून) से एक किलो रेशम धागा प्राप्त होता है। जिसका बाजार मूल्य 450 से 500 रुपये प्रति किलो होता है जबकि ककून बेचने से 280 से 300 रुपये ही मिल पाते हैं।

यदि चरखा द्वारा उत्पादित धागे से कपड़ा बुनाई तथा वस्त्र तैयार किए जाएं तो आमदनी में आशातीत बढ़ोतरी होगी। विदेशी बाजारों में भी रेशमी कपड़ा और उससे बने, सिले–सिलाए वस्त्रों की अच्छी मांग हैं। रेशमी कपड़ों का निर्यात कर उससे विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है।

रेशम उद्योग एवं सरकारी नीति

रेशम उत्पादन और रेशम उद्योग के विकास के लिए रेशम बोर्ड का गठन किया गया है। इस उद्योग के विकास के लिए 1989–90 में राष्ट्रीय रेशम परियोजना आई.बी.आर.डी., आई.डी.ए. तथा स्विस डवलपमेंट कार्पोरेशन के सहयोग से शुरू की गई। यह परियोजना केन्द्रीय रेशम बोर्ड के माध्यम से देश के बारह राज्यों में चलाई जा रही है। रेशम कीट पालन और शहतूत वृक्षों के रोपण के लिए रेशम निदेशालय एवं रेशम बोर्ड के माध्यम से तकनीकी और आर्थिक सहायता तथा अनुदान दिए जाते हैं। रेशम उद्योग के विकास के लिए चुने गए बारह राज्यों के रेशम निदेशालय अपने जनपद तथा फार्म स्तरीय प्रसार केन्द्रों के माध्यम से कार्य करते हैं। निदेशालय रेशम कीट पालकों को उन्नत प्रजाति के अधिक उत्पादकता वाले शहतूत पौधों तथा रेशम कीटों की आपूर्ति करता है और कीट पालकों को प्रथम दस दिनों तक विभागीय विशेषताओं की तकनीकी देख–रेख में पालित रोग प्रतिरोधक चाकी रेशम कीट की आपूर्ति करवाता है। इसके अलावा निदेशालय स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहन, वित्तीय सहायता, तकनीकी मार्गदर्शन एवं विपणन में भी सहयोग देता है। रेशम कीटपालाकों को कीटपालन के दौरान क्षतिपूर्ति हेतु रेशम बोर्ड द्वारा रेशम कीट बीमा योजना भी लागू की गई है।

रेशम विभाग द्वारा उन्नत प्रजाति के शहतूत पौधों, रोग प्रतिरोधक रेशक कीट एवं उच्च कोटि के रेशम धागों के उत्पादन पर शोध और विकास करते हुए कीटपालकों को तकनीक के हस्तान्तरण पर भी पूंजी निवेश सहायता दी जा रही है। उत्पादकता तथा गुणवत्ता में सुधार के लिए नई प्रजातियों को आवश्यक परीक्षणों के बाद कीटपालकों को उपलब्ध कराया जा रहा है। रेशम धागों की गुणवत्ता में सुधार हेतु नई प्रजातियों को आवश्यक परीक्षणों के बाद कीटपालकों को उपलब्ध कराया जा रहा है। आधुनिक कोसोत्तर तकनीक रेशम कीटपालन इकाइयों को उपलब्ध कराई जा रही है। राज्यों में एक सशक्त एवं स्वदेशी धागाकरण आधार विकसित करने के लिए उच्च कोटि की धागाकरण मशीनों और प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा रहा है। शहतूत वृक्षारोपण, रेशम कीटपालन, कोया उत्पादन व धागाकरण में आधुनिक तकनीक के विकास एवं हस्तान्तरण हेतु विभाग देश–विदेश की इकाइयों तथा कीटपालकों में समन्वय स्थापित करवा रहा है। रेशम उद्योग में तकनीकी कर्मियों की बढ़ती मांग को देखते हुए विश्वविद्यालयों की सहभागिता से स्नातक पाठ्यक्रम में रेशम उद्योग का विषय भी प्रारम्भ किया गया है।

शहतूत की पत्तियां खाते हुए रेशम कीट

स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका

रेशम कीटपालन को जनान्दोलन बनाने में स्वयंसेवी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। रेशम निदेशालय द्वारा कीटपालन एवं धागाकरण करने वाली समितियों का गठन किया गया है जिनको पंजीकृत कर प्रबन्धकीय सहायता आदि की सुविधाएं दी गई हैं। ये समितियां रेशम उद्योग के विभिन्न कार्यों को स्वतंत्र रूप से सम्पादित कर सकती हैं। इस प्रकार स्वयंसेवी संगठन रेशम उद्योग के प्रचार–प्रसार, प्रशिक्षण, वृक्षारोपण, कीटपालन, धागाकरण एवं बुनाई कार्यों को अपनाकर रेशम उद्योग के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

रेशम उद्योग तथा महिलाएं

रेशम उद्योग में महिलाओं को जीविकोपार्जन के अधिक अवसर प्राप्त हैं। यह उद्योग महिलाओं के लिए हर प्रकार से उपयोगी है क्योंकि यह घरों पर भी स्थापित किया जा सकता है। रेशम धागाकरण में कार्यरत महिलाएं इस कार्य के साथ अन्य दायित्वों को भी आसानी से पूरा कर सकती हैं। कोया उत्पादन एवं विपणन में महिलाओं की भागीदारी से आय भी बढ़ती है। रेशम उद्योग में शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही प्रकार की महिलाएं कार्य कर सकती हैं। महिलाएं समूह के रूप में भी रेशम कीटपालन कर सकती हैं। रेशम उद्योग से जुड़ी ज्यादातर महिलाओं के पास जमीन नहीं है और न ही आसानी से उन्हें ऋण मिलता है। प्रशिक्षण कर्मियों की कमी तथा बाजार की अनुपलब्धता आदि समस्याओं के कारण इस उद्योग में महिलाओं को वांछित सफलता नहीं मिल पा रही है।

रेशम विभाग द्वारा इन कमियों को दूर

करने का प्रयास किया जा रहा है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए रेशम धागाकरण इकाइयों को धुआं रहित चूल्हे के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। महिला समूहों की बढ़ती संख्या से महिलाओं में एकजुटता एवं नई चेतना जागृत हुई है। महिलाओं में वित्तीय प्रबन्धन क्षमता का विकास करके तथा उन्हें ऋण एवं बचत की सुविधाएं देकर इस उद्योग में महिलाओं की सहभागिता को बढ़ाया जा सकता है।

बीमारियां एवं अन्य समस्याएं

रेशम कीटों की बीमारियां रेशम उद्योग के लिए बड़ी समस्या है। इन बीमारियों के कारण विश्व में रेशम उद्योग को हर साल करोड़ों रुपये की क्षति होती है। रेशम कीटों में होने वाली कुछ प्रमुख बीमारियां निम्न हैं :

पेवरीन : यह रोग बहुत घातक होता है। यह रोग दो प्रकार से रेशम कीटों को प्रभावित करता है – आनुवांशिक और संक्रमण। इस रोग से ग्रस्त रेशम कीट का रंग पीला–भूरा हो जाता है, त्वचा झुर्रीदार व तेजहीन हो जाती है। बीमार रेशम कीट सुस्त भी होते हैं। इनके शरीर पर काले भूरे धब्बे पाए जाते हैं। रोगी कीट ककून बनाने से पहले ही मर जाते हैं या ककून बहुत धीरे–धीरे बनाते हैं। रोग के प्रभाव से कीट का पेट फूल जाता है और मुलायम हो जाता है। इस रोग से बचाव के लिए वह स्थान या ट्रे जहां ये रेशम कीट पाले जा रहे हों तथा इस्तेमाल होने वाले उपकरणों को जीवाणु रहित कर लेना चाहिए। रेशम कीट के अंडों को दो प्रतिशत फार्मेलीन के घोल में डुबोकर स्वच्छ जल से धो लेना चाहिए।

ग्रोसरिक : यह रोग रेशम कीटों को बहुत कम या बहुत अधिक तापमान में रखने पर फैलता है। इसमें कीट का रंग पीला हो जाता है, कीट के शरीर में सूजन आ जाती है, वह कई जगह से फट जाता है, और पत्तियां खाना बन्द कर देता है। इसे पीलिया रोग भी कहते हैं। ग्रोसरिक से बचाव के लिए रेशम कीटाण्डों को दो प्रतिशत फार्मेलिन में डुबोकर साफ पानी से धो लेते हैं। कीटपालन का स्थान साफ–सुथरा और हवादार होना चाहिए।

मस्कार्डिन : इस रोग में रेशम कीट के पूरे शरीर पर कवक फैल जाता है। रोगी कीट सुस्त हो जाते हैं तथा भोजन नहीं खाते और संक्रमण के पांच दिनों के अन्दर मर जाते हैं। मृत कीट का रंग लाल, हरा तथा पीला पड़ जाता है। कीटों में मस्कार्डिन के लक्षण पाये जाने पर सभी रेशम कीटों को दो प्रतिशत फार्मेलिन मिलाकर कीड़ों पर छिड़ककर उन्हें अखबार से ढक दें। आधे घण्टे बाद अखबार हटा लें और कीड़ों को ताजी पत्तियां खाने को दें।

फ्लैचरी : यह एक जीवाणु जन्य रोग है इसमें मृत कीट काले या भूरे पड़ जाते हैं। रोग ग्रस्त कीटों को अलग कर उन्हें मिट्टी में दबा देना चाहिए जिससे बाकी रेशम कीट संक्रमित होने से बच जाएं।

यूजी मक्खी (जो कर्नाटक और पश्चिम बंगाल में पाई जाती है), डरमोस्टिड बीटल, छिपकली, चीटियां, चूहे, गिलहरी एवं पक्षी रेशम कीट के प्रमुख शत्रु हैं। इन सभी से बचाव का सबसे बढ़िया उपाय यह है कि रेशम कीट पालन वाले कमरों के खिड़की दरवाजों पर जाली लगाकर इनका प्रवेश रोका जाए।

रेशम कीट पालन शुरू करने से पहले स्थान एवं उपकरणों को असंक्रमित कर लेना चाहिए जिसके लिए दो प्रतिशत फार्मेलिन घोल का प्रयोग करना चाहिए। कीटपालन वाले सभी कमरों के दरवाजों और खिड़कियों पर प्लास्टिक या लोहे की जालियां लगा देनी चाहिए। कमरों की नियमित सफाई करनी चाहिए। कमरे में कभी–कभी मेथिल ब्रोमाइड का धुआं देना चाहिए। ❑

(पृष्ठ 41 का शेष) **उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम...**

वर्ष 1999 में वसूली का प्रतिशत 82.19 रहा। इस बैंक को उत्कृष्ट कार्य निष्पादन के लिए विगत 5 वर्षों से कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय, नाबार्ड तथा भूमि विकास बैंकों के राष्ट्रीय फेडरेशन से उत्कृष्टता पुरस्कार एवं ट्राफी प्राप्त हुई हैं।

उ.प्र. राज्य सहकारी ग्राम विकास बैंक उद्देश्यवार ऋण वितरण 31.3.1999 तक (राशि करोड़ रुपये में)

क्रमांक	मद	संख्या	धनराशि
1.	लघु सिंचाई	28,03,414	2,437.90
2.	कृषि सिंचाई	1,44,406	484.61
3.	विविध योजनाएं	5,19,772	725.78
4.	अकृषि क्षेत्र	46,406	95.85
5.	ग्रामीण आवास	4,219	17.91
6.	संस्थागत वित्त	–	18.04
	योग	35,98,220	3,780.09

स्रोत – उ.प्र. सहकारी ग्राम विकास बैंक लि. की डायरी – 2000

समस्याएं एवं कमियां

उ.प्र. राज्य सहकारी ग्राम विकास बैंक यद्यपि श्रेष्ठ कार्य निष्पादन कर रहा है तथापि उसके समक्ष कतिपय समस्याएं भी मौजूद हैं। बैंक के प्रबन्धन में राजनैतिक हस्तक्षेप, शाखाओं की संख्या का कम होना, ऋणों की राशि का अपर्याप्त होना, ऋण वितरण में भ्रष्टाचार आदि समस्याओं का निराकरण अपेक्षित है। नवीन आर्थिक परिवेश में बैंक को अपनी गतिविधियों और कार्यशैली में समयानुकूल परिवर्तन करने चाहिए ताकि यह बैंक ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्र के विकास में अपना और बेहतर योगदान कर सके। ❑

शहरों में भटकती उजड़े गांवों की आत्मा

योगेन्द्र कृष्णा*

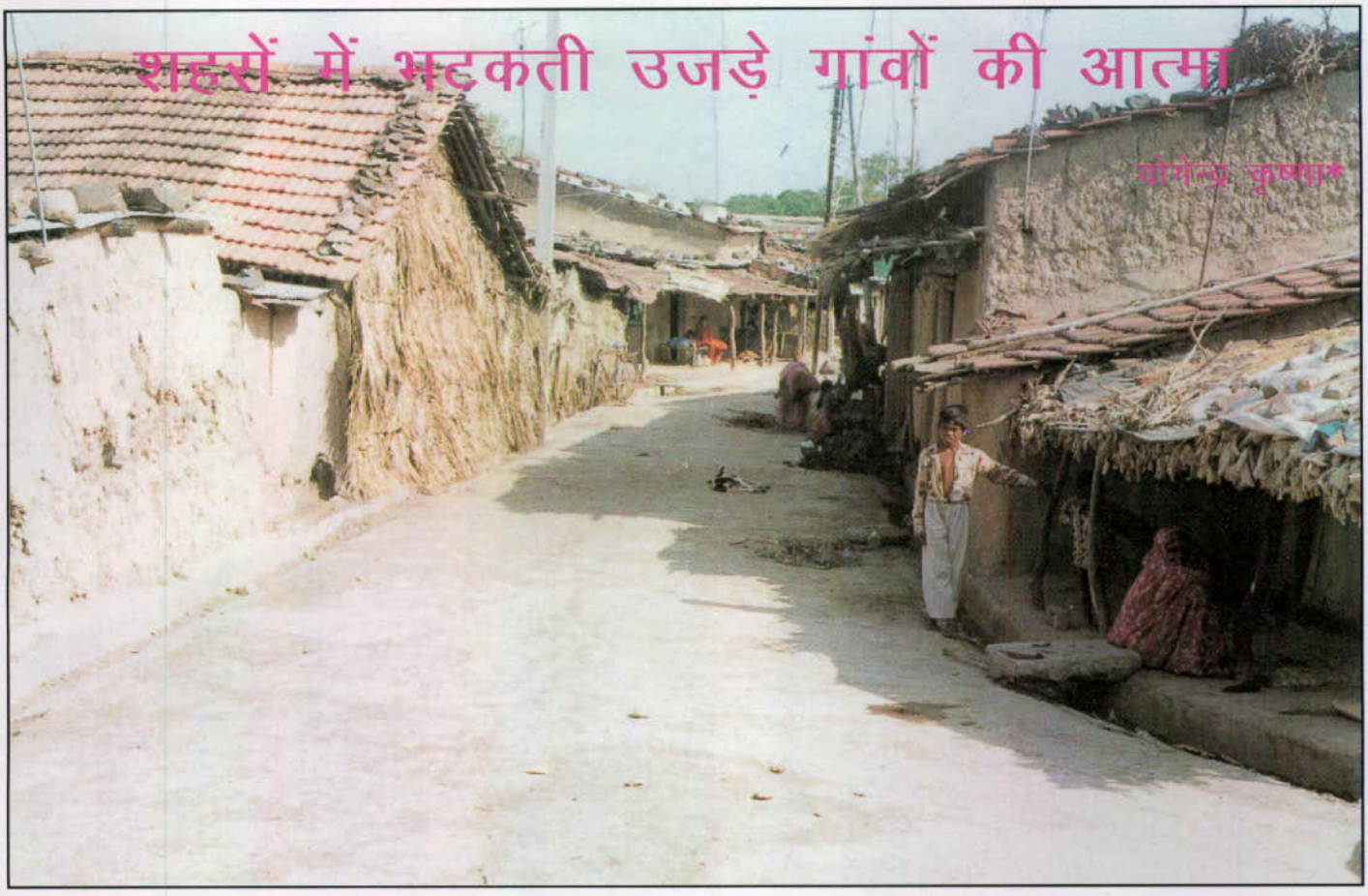

आज जब हम 21वीं सदी की चुनौतियों एवं इसके सपनों की चर्चा करने में मशगूल हैं, समाज का एक दूसरा वर्ग, समय के प्रवाह से पूरी तरह बेखबर, इन गतिविधियों से सर्वथा अनभिज्ञ, अपनी नियति से उसी तरह जूझ रहा है जिस तरह आज से 50 वर्ष पहले जूझ रहा था – और इस 50 वर्ष के अंतराल में, एक ओर जहां इस संघर्ष में पूरी की पूरी एक पीढ़ी हताश, जर्जर एवं अशक्त हो चुकी है, वहीं दूसरी ओर नई पीढ़ी, विरासत में मिली इस नियति को उसी तरह ढोने के लिए क्रमशः अभिशप्त हो रही है।

यह समाज का वह अनाम वर्ग है जो बेघर तो है ही, नियति की निरंतर मार ने उसके सपनों की जमीन भी बंजर बना दी है। यह वह वर्ग है जिसे कोई फर्क नहीं पड़ता – जाड़े की ठिठुरती रात हो या गर्मी की चिलचिलाती धूप – उसके लिए कोरी धरती के ऊपर खुला आसमान ही उसका बसेरा है।

* प्रशाखा पदाधिकारी, प्रकाशन विभाग, बिहार विधान परिषद्

सर्वथा शहरी सभ्यता में पले समाज के संभ्रांत वर्ग के लिए ये बेघरबार जन–समूह उनके शहर पर एक काले धब्बे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। ये शहरी सभ्यता की उदासीनता का ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक रोष एवं अदूरदर्शिता के भी शिकार हैं।

आज से 13 वर्ष पहले, संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1987 को दुनिया के ऐसे तमाम अनाम लोगों के नाम समर्पित किया था जो बेघर हैं। शहरों में इन्हें मानव का दर्जा देकर बसाने की समस्या ने आज सरकार के लिए इतना भयावह रूप ले रखा है कि एक वर्ष तो क्या पूरी शताब्दी भी यदि इनके नाम समर्पित कर दी जाए तो कम होगी। फिर किसी नाम से घोषित वर्ष तो हमारे यहां मात्र उत्सव–चर्चाओं या गोलमेज वार्ताओं के विषय बन कर रह गए हैं। मिसाल के तौर पर, विगत वर्षों में हमने बाल वर्ष, महिला वर्ष और युवा वर्ष मनाए। लेकिन इन अंतरराष्ट्रीय वर्षों को समय की परतों ने – ठोस और सार्थक उपलब्धि के अभाव में – इस तरह ढक लिया है, कि इतिहास भी इन वर्षों का जिक्र करते हुए लज्जित ही महसूस करेगा।

शहरों में रहते हुए भी, शहरी समाज से, उसकी गतिविधियों से, मुख्य जीवनधारा से या यूं कहें – पूरी सभ्यता से कटे होने की त्रासदी शायद उनकी नियति बन गई है। शहरों में उनके अस्तित्व से भी बेखबर हैं ये आधुनिक शहर। उनके जीवन, उनके सुख–दुख या आम दिनचर्या में इस समाज की कोई दिलचस्पी नहीं। जीवन के प्रति जीवन की इतनी निर्मम उदासीनता आधुनिक समाज की उस विडंबना की ओर संकेत करती है जहां हम उनके जीवन की हताशा से कहीं ज्यादा अपने ही जीवन के खोखलेपन से साक्षात्कार कर रहे होते हैं।

शहरी सभ्यता की इस उदासीनता के बावजूद वे गांवों को छोड़कर शहरों में बसने की कोशिश कर रहे हैं, जिसके मूल में न तो शहरी सभ्यता का आकर्षण है और न गांवों से मोहभंग जैसी कोई प्रक्रिया इसके पीछे काम कर रही है। इसके पीछे काम कर रहा एक

ही अहम तथा मौलिक दबाव है – आर्थिक विपन्नता का, जिसकी निरंतर मार ने उन्हें शहरों में धकेला है। इनकी आर्थिक विपन्नता का सबसे बड़ा कारण औद्योगीकरण, विज्ञान और तकनीकी के असंतुलित रूप से बढ़ते कदम हैं – जो गांवों के विकास की कीमत पर हो रहे हैं। विकास की यह असंतुलित प्रक्रिया वैसे तो तीन–चार दशक पहले ही शुरू हो गई थी, पर नब्बे के दशक में आरंभ किए गए आर्थिक उदारीकरण ने इसे काफी तेज कर दिया। उदारीकरण की मूल संकल्पना ही उद्योगों को ले कर चलती है। दूसरी तरफ, गांवों की अर्थव्यवस्था कृषिक है। विकासशील अर्थ व्यवस्थाओं में कृषि और उद्योग के बीच सामंजस्य होना चाहिए, इसके ठीक विपरीत हमने कृषि और उद्योग को एक द्वन्द्व के रूप में देखा। आर्थिक उदारीकरण ने भी उद्योगों को ही बढ़ावा दिया और उद्योग शहरों के आस–पास ही केन्द्रित हैं। भारत में तो बिल्कुल स्पष्ट है कि औद्योगिक विकास की बुनियादी संरचनाएं शहरों के इर्द–गिर्द ही या तो जमा हुई हैं या जमा की जा रही हैं। कृषि की प्रायः उपेक्षा और गांवों से दूर किए जा रहे औद्योगीकरण ने एक साथ मिल कर जीवन के ग्रामीण संदर्भों को ही तहस–नहस कर दिया है।

ऐसे हालात में गांव के लोग शहरों में जीवन–निर्वाह की न्यूनतम अपेक्षाओं के साथ आते हैं। इन सारी वजहों से पिछले कुछ सालों में गांव की जनसंख्या में काफी कमी आई है, और उसी अनुपात में शहरी जनसंख्या में विस्फोट भी हुआ है। यदि हम इसे भारतीय जनांकिकी परिदृश्य पर आंकड़ों के माध्यम से देखने की कोशिश करें तो बड़ी सहजता से गांव की तुलना में बढ़ती शहरी जनसंख्या के विस्फोट को समझा जा सकता है। सन् 1901 में भारत की कुल जनसंख्या का 89.2 प्रतिशत ग्रामीण था और 10.84 प्रतिशत शहरी। 1951 में यह अनुपात 82.7 और 17.3 का हो गया। यानी पचास वर्षों में, कुल जनसंख्या में ग्रामीण आबादी 6.5 प्रतिशत कम हो गई और शहरी जनसंख्या में इतना इजाफा हुआ। 1971 में देश की कुल जनसंख्या का 19.9 प्रतिशत शहरी हो गया जबकि ग्रामीण जनसंख्या घट कर कुल 80.1 प्रतिशत रह गई। फिर 1991 की जनगणना के मुताबिक भारत की एक चौथाई आबादी शहरों में रह रही थी – 25.72 प्रतिशत शहरी जनसंख्या के मुकाबले 74.3 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या। शहरों की तेज गति से बढ़ती जनसंख्या को दिखाने वाले इन आंकड़ों को दूसरे प्रतिरूप में देखें, तो 1901 की तुलना में 1991 में भारत की ग्रामीण आबादी बढ़कर जहां करीब तीन गुणा हुई, वहीं शहरी आबादी करीब आठ गुणा हो गई। शहरों के किनारों पर या बीच शहर में बसी तंग, गंदी और नंगी बस्तियां इसी शहरी जनसंख्या विस्फोट की परिणति हैं।

1970 से 1985 यानी 15 वर्षों के अंतराल में तीसरी दुनिया के कुछ बड़े शहरों में जनसंख्या विस्फोट की दर इस प्रकार थी :

एशिया	**1970**	**1985**
मुम्बई	51,00,000	91,00,000
कलकत्ता	73,50,000	1,12,00,000
दिल्ली	31,00,000	65,90,000
बगदाद	12,50,000	26,00,000
जकार्ता	45,00,000	1,09,00,000
कराची	32,46,000	80,50,000
सिंगापुर	21,13,000	43,00,000
अफ्रीका		
अकारा	7,50,000	21,00,000
डकार	6,00,000	14,10,000
लागोस	8,00,000	29,00,000
नैरोबी	5,00,000	21,65,000
अमरीका		
बोगोटा	25,00,000	93,10,000
काराकस	21,47,000	64,90,000
मेक्सिको सिटी	35,41,000	43,80,000

शहरों की इस पूरी जनसंख्या का एक बहुत ही बड़ा हिस्सा बेघरबार है जो कभी यहां तो कभी वहां झुग्गी–झोपड़ियों में भटक रहा है। भारत की पूरी जनसंख्या का 7 प्रतिशत इस तरह की तंग बस्तियों में निवास करता है। अकेले मुम्बई में 42 लाख लोग, यानी मुम्बई की पूरी आबादी का 50 प्रतिशत, ऐसी ही तंग बस्तियों में जीवन बसर कर रहा है। दिल्ली में इसकी जनसंख्या 18 लाख है, कलकत्ता में 30 लाख और मद्रास में 43 लाख है।

अपेक्षाकृत बड़े शहरों की ओर गांवों के भागने का कारण उन बड़े शहरों की संपन्नता है जहां अपने गांवों से उखड़े हुए, आर्थिक रूप से निराश लोग छोटे–मोटे कार्य कर अपना और अपने परिवार का पेट पाल सकते हैं। गांवों से इन्हें अब यह न्यूनतम अपेक्षा भी नहीं रह गई है, क्योंकि विकास की आर्थिक योजनाओं में ऐसे जन–समूह के लिए गांव में जीवन–निर्वाह जैसी कोई न्यूनतम कारगर व्यवस्था नहीं है। भारत में समेकित ग्रामीण विकास जैसी योजनाएं जहां एक ओर इस समस्या की भयावहता के अनुपात में बहुत बौनी पड़ जा रही हैं वहीं दूसरी ओर प्रशासनिक अक्षमता और दृढ़ इच्छा शक्ति के अभाव में, इस वर्ग के लिए चलाई जा रही आवास योजनाओं के लिए आवंटित राशि भी राज्य सरकारें खर्च नहीं कर पा रही हैं।

शहर का वह खास वर्ग जो भारत में विकास की आर्थिक योजनाओं से सबसे अधिक लाभान्वित हुआ है वह पहले से भी धनी था। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वें चक्र के सर्वेक्षण के अनुसार नगरीय क्षेत्रों में निम्नतम 40 प्रतिशत जनसंख्या को उपभोग योग्य व्यय का केवल 20.2 प्रतिशत प्राप्त था जबकि इसके विरुद्ध उच्चतम 20 प्रतिशत जनसंख्या को कुल उपभोग व्यय का 41.6 प्रतिशत प्राप्त था। अब गांव के प्रवासी जन–समूह का बहुत बड़ा भाग, जो शहर की अर्थव्यवस्था पर परजीवी की तरह लटक रहा है, इसी संपन्न वर्ग के उस धनांश का हिस्सेदार बनकर रह गया है जिसे वह अपनी विलासिता, सुविधापरस्ती, ऐशो–आराम या रोजमर्रा की आवश्यकता के मद में व्यय कर रहा है। इन परजीवियों का दूसरा बड़ा भाग भवन–निर्माण कार्य में लगे उन मजदूरों का है जो ऐसा महसूस करते हैं कि गांवों में अपने श्रम की मजदूरी की तुलना में शहरों में न्यूनतम मजदूरी की दर ज्यादा और सुरक्षित है।

गांवों से विस्थापित इन जन–समूहों के प्रति जब कभी भी हमने सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की कोशिश की है, हमारा यह

(शेष पृष्ठ 48 पर)

कृषि सम्बन्धी कानून

सावित्री निगम

भारत जैसे मिली–जुली नीति से अनुशासित और प्रजातांत्रिक व्यवस्था को मान्यता देने वाले देश में, समुचित और योजनाबद्ध स्वस्थ विकास तथा उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए उत्पादन के हर क्षेत्र का कुछ न कुछ कानूनी नियन्त्रण आवश्यक–सा है। व्यक्तिगत स्वार्थ और स्वतंत्रता को ऐसी मर्यादा की सीमा में बांधना कि उसके प्रभाव से दूसरे की स्वतंत्रता का अपहरण न होने लगे और साथ ही अपने हितों के साथ देश और समाज का भी हित करने की प्रेरणा लोगों को मिलती रहे, यह उद्देश्य ले कर भी बहुत से कानून बनाए जाते हैं। कुछ कानूनों का निर्माण किसी न किसी कुरीति या समाज में प्रचलित अन्याय को दूर करने के लिए होता है। कभी–कभी सरकार कुछ ऐसे कानून बनाती है जिनसे तत्क्षण हानि हो पर आगे चलकर लाभ हो सके और व्यक्तिगत लाभ तथा सामूहिक हानि की सम्भावनाओं को भी रोका जा सके।

कानूनों की विभिन्न खूबियों में सब से बड़ी खूबी यह होती है कि वह ऐसा सुलभ, सरल और सर्वप्रिय हो कि उसके पालन में अमीर–गरीब, अपढ़ एवं शिक्षित सब को समान तथा उत्साह, सुविधा और लाभ हो सके। अच्छे–से अच्छे, उपयोगी–से–उपयोगी कानून भी अक्सर किसी–न–किसी कमी के कारण लागू नहीं हो पाते और लोगों में कानूनों की अवहेलना की प्रवृत्ति बढ़ाने के साथ ही ऐसे कानून जनता में एक अजीब अनिश्चितता एवं उलझन ला देते हैं और उनका दुरुपयोग भी होने लगता है और ग्रामीण अशिक्षित जनता को असामाजिक व्यक्ति, लालची अधिकारी तथा अन्यायी व्यक्ति खूब लूटने लगते हैं।

कृषि क्षेत्र के लिए किसी प्रकार के कानूनों का निर्माण करते समय बहुत ही सूझ–बूझ, सतर्कता, समझदारी और गम्भीर चिन्तन, निरीक्षण तथा चौकसी की आवश्यकता है क्योंकि इन कानूनों के पालन की जिम्मेदारी और प्रभाव उस 29 करोड़ 5 लाख गरीब अर्ध–शिक्षित और अपढ़ जनता पर पड़ता है जो गांवों के सुविधा, सामर्थ्य और साधनविहीन क्षेत्र में रहती है। इन कानूनों को जो कृषि क्षेत्र में विकास सुविधाएं और साधनों को सर्वसुलभ बनाने के लिए लाए जाते हैं सब से पहले सर्वस्वीकृत, उपयोगिता तथा कानून पालन की सामर्थ्य की कसौटी पर कसा जाना चाहिए। वैसे इन सारे मौजूदा और निकट भविष्य में बनाए जाने वाले कानूनों को हम सात भागों में बांट सकते हैं।

(क) कृषि विस्तार विषयक कानून जैसे – खेतों और खेती योग्य भूमि के उपयोग विषयक कानून।

(ख) खेती की विधि में उन्नति लाने के लिए बनाए हुए कानून।

(ग) फसलों के नमूने और नियोजन तथा फसल उत्पादन सम्बन्धी कानून– जैसे काटन कन्ट्रोल, बाम्बे ग्रोथ आफ फूड एक्ट और काटन ट्रान्सपोर्ट एक्ट।

(घ) फसलों की रक्षा के लिए बनाए गए कानून, फसलों को नष्ट करने वाले कीटाणुओं से बचाने के लिए पेस्ट कन्ट्रोल एक्ट।

(ड.) कृषि उत्पादन बिक्री से सम्बन्धित कानून, एग्रीकल्चर प्रोड्यूस मार्केटिंग एक्ट, क्वालिटी कन्ट्रोल, वेयर हाउसिंग कार्पोरेशन एक्ट आदि।

(च) स्थायी भूमि सुधार कानून जिसमें भूमि व्यवस्था कानून, सिंचाई नियन्त्रण कानून आदि।

(छ) सब से मुख्य और आवश्यक कानून भूमि सुधार और भूमि रक्षा कानून है जैसे सीलिंग आन लैण्ड होल्डिंग और कन्सालिडेशन ऑफ लैंड होल्डिंग्स।

उपर्युक्त कानूनों में से कुछ कानून तो काफी उपयोगी सिद्ध हो चुके हैं। पर कानूनों के पालन में इतनी कठिनाइयां लोगों के सामने आई हैं कि उन्होंने किसी प्रत्यक्ष लाभ की कौन कहे, हानि ही पहुंचाई है और उनकी आड़ में समाज विरोधी प्रवृत्ति के व्यक्तियों ने भोली–भाली गरीब जनता का जगह–जगह शोषण भी किया है। किसी भी कानून की उपयोगिता भारत जैसे कृषि प्रधान तथा गरीब देश में उसी समय हो सकती है जब वह कानून कल्याणकारी कानून हो। इस दृष्टि से हम सभी कानूनों को दो विभागों में बांट सकते हैं। एक तो 'कल्याणकारी कानून' जो कुरीतियों, शोषक प्रथाओं और साधनों के अन्यायपूर्ण विभाजन को दूर करने तथा नियमित करने के लिए बनाए जाते हैं और दूसरे वे कानून जो रोकथाम और सरकार द्वारा आदेशित विधियों द्वारा खेती कराने के लिए निर्मित किए गए हैं। इन दूसरी प्रकार के कानूनों को लाने के पहले पूरी गम्भीरता से इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि इनका गरीब जनता पर क्या प्रभाव पड़ने वाला है। कृषक जनता में इतनी सामर्थ्य है या नहीं या उनकी प्रत्यक्ष अच्छाई का उद्देश्य ले कर बनाए हुए कानून गरीबी व असमर्थता के कारण कहीं उन्हें भूखों मारने की स्थिति में तो नहीं डाल देते। किसी प्रकार की रोकथाम लगाने वाले कानून को लाने के साथ ही जब कल्याणकारी कानून नहीं लाए जाते तो उनका प्रभाव ऐसा पड़ता है कि कानून लाने का उद्देश्य आधा हो जाता है।

जैसा कि जमींदारी उन्मलन कानून जैसे महत्वपूर्ण कानून के साथ ही साथ पहले टेनेन्सी एक्ट और लैण्ड सीलिंग एक्ट न लाने के कारण छोटे लाखों किसानों की बेदखलियां हुईं और उन गरीब किसानों को थोड़ी जमीन और बड़ा परिवार होने के कारण अनेक

कठिनाइयां उठानी पड़ीं और जमीन के उस छोटे सहारे से भी हाथ धोना पड़ा। जहां इन्साफ, कानूनी सलाह इतनी महंगी हो वहां कानून की थोड़ी–सी कमजोरी भी गरीबों के गले की फांसी बन जाती है। इसलिए ऐसे कानूनों को जो कृषि क्षेत्र में लाए जाते हैं, धीरे–धीरे पूरी छानबीन और सर्वेक्षण के पश्चात् ही लाया जाना चाहिए। पर ऐसे कानून जिनके द्वारा किसानों को आर्थिक सहायता, सस्ते दर पर उर्वरक, उत्तम बीज, खेती के सुधरे औजार, कम्पोस्ट के निर्माण के लिए जमीन आदि दिलाई जा सकें, ऐसे कानूनों में जितनी भी शीघ्रता सम्भव है लाई जानी चाहिए। और जो ऐसे कानून पास हो गए हैं, उनको शीघ्रातिशीघ्र लागू किया जाना अति आवश्यक है।

रासायनिक खादों जैसे – सुपरफास्फेट, नाइट्रोजन, पोटेशियम आदि में मिलावट रोकने तथा उनको सस्ते मूल्य पर गरीब किसानों को उपलब्ध कराने के लिए कुछ कानून बहुत शीघ्र ही पास होने चाहिए।

एक बहुत बड़ी कमजोरी जो इन कानूनों को कायदे से लागू किऐ जाने में रुकावट डालती है और जिसे देश के कर्णधार और नीति–निर्णायक संसद तथा विधान सभा सदस्य ही दूर कर सकते हैं वह यह है कि वे रेवेन्यू अधिकारी जो इन कानूनों के परिपालन के लिए जिम्मेदार रहते हैं, कृषि क्षेत्र से उनका कोई सम्बन्ध न रहने के कारण वे बिल्कुल अनभिज्ञ रहते हैं और उन्हें पता नहीं चलता कि कितनी बडी संख्या में व्यक्ति इन कानूनों की अवहेलना करते हैं। ऐसे अधिकारी नहीं जानते कि इस अवहेलना से क्या नुकसान है और कानूनों के पालन का उत्पादन पर क्या असर पड़ेगा। वे बिलकुल अन्धकार में रहते हैं। इसी प्रकार विस्तार अधिकारी जो एक प्रकार से ग्रामीण क्षेत्र का नेता, रहनुमा और मार्गदर्शक होता है, उससे भी रेवेन्यूज वसूल करने का अत्यन्त नाजुक और गांव वालों के कोपभाजन बनाने वाला काम लेना अनुचित है। अच्छा हो कि एक अन्य अधिकारी इन सभी कामों के लिए नियुक्त कर दिया जाए।

किसानों की आर्थिक स्थिति में आवश्यक सुधार लाने के लिए क्वालिटी कन्ट्रोल आफ सीड्स आफ वेजीटेबिल, नर्सरी प्लान्टस कन्ट्रोल और प्रोड्यूसर्स कन्ट्रोल्ड मार्केटिंग बोर्ड एक्ट शीघ्र पास किए जाने चाहिए और जब तक किसानों को अपना अन्न रखने के लिए वेयर हाउसिंग की पूरी सुविधा और उसी अन्न की जमानत पर आवश्यक ऋण न मिलेगा तब तक किसानों का शोषण बराबर चलता रहेगा।

जंगली, आवारा और सूखे पशुओं ने चारे की एक बड़ी मात्रा और चरागाह सफाचट कर के अब फसलों पर हमले करना शुरू कर के एक बड़ी विकट स्थिति पैदा कर दी है और इनकी संख्या जिस तेजी से बढ़ रही है यदि भावुकता छोड़ कर, बेकार सांडों को बधिया करने का कानून न बनाया गया तो अन्न उत्पादन वृद्धि के सारे कार्यक्रम प्रभावहीन हो जाएंगे। वैसी भूमि व्यवस्था में सॉयल कन्जरवेशन के कानूनों का भी महत्व कम नहीं है पर ग्रेडिंग, मार्केटिंग तथा चकबन्दी, और टेनेन्सी तथा भूमि सीमा निर्धारित करने के लिए लाए जाने वाले कानूनों में शीघ्रता लाई जानी चाहिए।

खेती योग्य भूमि के उपयोग सम्बन्धी कानून को भी जल्दी से जल्दी लाया जाना आवश्यक है क्योंकि अक्सर झगड़ेवाली, बंटवारे और पारिवारिक कठिनाइयों के कारण न जोती जाने वाली जमीनों को जोतने का अधिकार यदि पंचायतों को दे दिया जाए, और परिवार को उसी धन से आंशिक सहायता दिलाई जा सके तो परिवार तथा पंचायत को आर्थिक लाभ होने के अतिरिक्त अन्न उत्पादन में भी कमी न आने पाएगी।

कृषि क्षेत्र में उचित और उपयोगी कानूनों के द्वारा, विशेष रूप से कानून जो कृषक समाज की सहमति, मांगों और आवश्यकताओं के आधार पर बनाए जाएं, एक आश्चर्यजनक परिवर्तन और विकास तथा प्रगति लाई जा सकती है। ❑

(शेष पृष्ठ 46 का शेष) **शहरों में भटकती उजड़े गांवों की आत्मा...**

प्रयास हर बार एक बौद्धिक हंगामा या महज लफ्फाजी के रूप में उभरकर शांत हो गया है। उदाहरण के लिए, कई साल पहले मुम्बई में झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वालों की समस्या के प्रति शहर की कुछ फिल्मी हस्तियों ने आवाज उठाई थी। जिसमें शबाना आजमी और स्व. स्मिता पाटिल के नेतृत्व में कई अन्य कलाकारों ने सक्रिय रूप से प्रदर्शन आदि में भी भाग लिया था। आज से लगभग 40 वर्ष पहले इनकी समस्या पर चेतन आनंद ने एक सशक्त फिल्म 'नीचा नगर' का भी निर्माण किया था, जिसमें उन्होंने खासकर इस निर्मम सच की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहा था कि किस प्रकार समाज का धनी वर्ग इन झुग्गी–झोपड़ियों को उजाड़ने का षड्यंत्र रचता है और तब उस जमीन पर कैसे बहुमंजिली इमारतें या फैक्ट्रियां स्थापित कर लेने में सफल होता है। इस यथार्थ को आज से चालीस वर्ष पहले रूपायित किया गया, लेकिन तब से आज तक शोषण का यह रूप निरंतर जारी ही नही, बल्कि बहुआयामी बनकर हमारे सामने एक चुनौती के रूप में खड़ा है। अभी कुछ वर्ष पहले सरकार ने मुम्बई के धारावी क्षेत्र में 23 हेक्टेयर ऐसी जमीन मात्र कुछ लाख में ही एक व्यापारी को बेच डाली जिस पर ये बेघरबार लोग वर्षों से झुग्गी–झोपड़ियों में रह रहे थे।

यदि हम 21वीं सदी में सचमुच समाज के शोषित वर्गों के प्रति अपने सरोकारों को सार्थक उपलब्धियों के आईने में देखना चाहते हैं तो हमें अपनी आर्थिक नीतियों में प्राथमिकताओं के प्रति अत्यधिक सावधान होना पड़ेगा। इन प्राथमिकताओं को समूचे भारत के आर्थिक विकास के संदर्भ में आंकना होगा। और यह तथ्य, चाहे जितना भी कटु क्यों न हो, स्वीकार करने का साहस बटोरना होगा कि मात्र 'शहरों' को 21वीं सदी में प्रवेश करा देने से हमारा 'देश' 21वीं सदी में प्रवेश नहीं कर जाता। और गांव की रूह इन तंग, नंगी बस्तियों के रूप में शहरों का पीछा तब तक करती रहेगी जब तक हम इनके जीवन और गांव की जमीनी समस्याओं से रू–ब–रू होकर आर्थिक नीतियों का निर्माण नहीं करते। ❑

(द्वितीय आवरण पृष्ठ से जारी)

का उपयोग नहीं किया जाएगा जबकि गरीबी रेखा से नीचे के विकलांग लोगों के लिए निधियों के 3 प्रतिशत तक खर्च किया जाएगा।

लाभार्थियों की पहचान

जिला ग्रामीण विकास एजेंसियां/जिला परिषदें बनाए जाने वाले मकानों की पंचायतवार संख्या का निर्धारण करेंगी तथा इसकी सूचना ग्राम पंचायत को देंगी। इसके बाद, ग्राम सभा निर्धारित पात्र परिवारों की सूची में से लाभार्थियों का चयन करेंगी। चुने गए लाभार्थियों की एक सूची अनिवार्य रूप से पंचायत समिति को भेजी जाएगी। मकानों का आवंटन लाभार्थी परिवार की महिला सदस्य के नाम होगा। इसे पति–पत्नी दोनों के नाम भी किया जा सकता है।

मकानों का स्थान

योजना के अंतर्गत मकान सामान्यतः गांव की मुख्य बस्ती में निजी भूखण्डों पर बनाए जाएंगे। इन मकानों को समूहों में भी बनाया जाएगा जिससे कि आंतरिक सड़कों, नालियों, पेयजल की आपूर्ति आदि जैसी तथा सामान्य सुविधाओं के लिए विकास ढांचे की सुविधा प्रदान की जा सके। इस बात पर भी सदैव ध्यान दिया जाएगा कि योजना के अंतर्गत मकान गांव के नजदीक हों जिससे कि सुरक्षा, कार्यस्थल से नजदीकी तथा सामाजिक सम्पर्क सुनिश्चित किया जा सके।

लाभार्थियों की भागीदारी

मकानों के निर्माण के तरीके के संबंध में लाभार्थी पूरी तरह स्वतंत्र होंगे। आवासीय इकाइयों के निर्माण में कोई ठेकेदार शामिल नहीं होगा। मकान किसी सरकारी विभाग/ संगठन द्वारा भी नहीं बनाया जाएगा। मकानों का निर्माण लाभार्थी द्वारा स्वयं किया जाना चाहिए।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा विकसित की गई स्थानीय सामग्रियों एवं किफायती प्रौद्योगिकियों का यथासंभव अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयास किया जाना चाहिए। मकान के लिए किसी डिजाइन की किस्म निर्धारित नहीं की जानी चाहिए सिवाय इसके कि मकानों का कुर्सी क्षेत्रफल लगभग 20 वर्गमीटर से कम न हो। मकानों की ले आउट, आकार और डिजाइन स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर लाभार्थियों के इच्छानुरूप होनी चाहिए। पर्यावरणीय परिस्थितियों, रसोई, वायु संचार, शौचालय सुविधाएं, धुआंरहित चूल्हा आदि उपलब्ध कराने की व्यवस्था हो। विकलांगों के लिए बनाए जाने वाले मकानों में चलने– फिरने में आसानी हो। प्राकृतिक आपदाओं (आगजनी, बाढ़, चक्रवात, भूकम्प) की बारम्बारता वाले क्षेत्रों में आपदा–रोधी विशेषता वाले डिजाइन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

धुआंरहित चूल्हा तथा स्वच्छ शौचालय का प्रावधान

यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सभी मकानों में धुआंरहित चूल्हा हो तथा ये चूल्हे ईंधन बचाने वाले हों। स्वच्छ शौचालय का निर्माण इस योजना का एक अभिन्न अंग होगा।

निर्माण सहायता की अधिकतम सीमा

योजना के तहत निर्माण सहायता के लिए अधिकतम सीमा मैदानी क्षेत्रों के लिए 20,000 रुपये प्रति मकान तथा पहाड़ी/दुर्गम क्षेत्रों के लिए 22,000 रुपये प्रति मकान है। न रहने लायक कच्चे मकानों को पक्के/अर्द्ध पक्के मकानों में बदलने के लिए अधिकतम सहायता राशि 10,000 रुपये होगी।

कार्यान्वयन का तरीका

योजना के तहत प्रस्ताव राज्य सरकारों द्वारा केन्द्र सरकार को भेजे जाएंगे। गरीबों के लिए आवासों के प्रस्ताव के अतिरिक्त आंतरिक सड़कों, जल निकासी, पेयजल, वृक्षारोपण, बसावटों में सुधार लाने तथा मकानों को चक्रवात एवं भूकंपरोधी बनाने के लिए भी प्रस्ताव भेजे जाएंगे। इन मदों पर खर्च की अधिकतम सीमा प्रस्ताव लागत के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। प्रस्तावित निधियों के 20 प्रतिशत तक का उपयोग कच्चे न रहने लायक मकानों को पक्के/अर्द्ध पक्के मकानों में परिवर्तित करने पर खर्च होगा।

निधियों की रिलीज

योजना के लिए निधियां केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की सिफारिश पर केन्द्र सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा दो किस्तों में राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों को रिलीज की जाएंगी। निधियों की दूसरी किस्त उपयोग प्रमाण पत्र/लेखा परीक्षा रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद रिलीज की जाएगी। किन्तु वर्ष 2000–2001 के दौरान दूसरी किस्त इन कार्यविधियों को पूरा किए बगैर जारी की जाएगी। वित्त वर्ष के दौरान कुल रिलीज वर्ष के दौरान राज्य/संघ शासित क्षेत्र के लिए आवंटित राशि तक सीमित होगी।

निगरानी और मूल्यांकन

राज्य सरकार को सर्वाधिक रिपोर्ट/रिटर्न निर्धारित करनी चाहिए जिनके माध्यम से यह जिलों के निष्पादन की निगरानी करेगी तथा योजना की सही निगरानी के लिए जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों/जिला परिषदों से उपयुक्त रिपोर्ट और रिटर्न भी प्राप्त करेगी। प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास) के संदर्भ में रिपोर्ट तथा रिटर्न राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों द्वारा भारत सरकार को, अलग से, निर्धारित प्रारूप में भेजी जाएगी। ❑

आर एन. /708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या :डी (डी एल) 12057/2000
आई.एस.एन.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना के अधीन डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)–55

R.N./708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/2000
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to Post without pre-payment of DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रकः अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया–II, नई दिल्ली–20 संपादकः बलदेव सिंह मदान